प्रकाशक :

प्रेम नाथ साधु

डी-४४,
पम्पोश एन्क्लेव,
(ग्रेटर कैलाश I)
नई दिल्ली-११००४८

पुस्तक प्राप्ति स्थान
प्रकाशक
दूरभाष 6432430
6468418

प्रथम संस्करण

जुलाई १९९० ई०

प्रथम आवृत्ति १००० प्रतियां
(रियायती)
मूल्य—१५ रुपये

(सर्वाधिकार प्रकाशक अधीन)

मुद्रक : छाबड़ा प्रेस
७९०/५,
चिराग दिल्ली
नई दिल्ली-११००१७

स्वर्गीय माता धन्वती (बूआ)
स्वर्गीय पिता जनार्दन साधु
की पुण्य स्मृति में
सादर समर्पित

श्री शिवमहिम्नस्तोत्रम्

(श्री पुष्पदन्त विरचितम्)

मूल पाठ, श्लोक, सन्धिच्छेद
पदच्छेद, अन्वयार्थ, व्याख्या
और टिप्पणी सहित

———

लेखक

प्रेम नाथ साधु

एम. ए.

संशोधन-संवर्धन-कर्त्ता
डा० बलजिन्नाथ पण्डितः,
एम.ए., एम.ओ.एल., पी.एच.डी.,
शोधनिदेशकः शैवदर्शनकोष परियोजना,
श्री रणवीर विद्यापीठ, जम्मू।

प्रकाशक :

प्रेम नाथ साधु

डी-४४,
पम्पोश एन्क्लेव,
(ग्रेटर कैलाश I)
नई दिल्ली-११००४८

पुस्तक प्राप्ति स्थान
प्रकाशक
दूरभाष 6432430
6468418

प्रथम संस्करण

जुलाई १९९० ई०

प्रथम आवृत्ति १००० प्रतियां
(रियायती)
मूल्य—१५ रुपये

(सर्वाधिकार प्रकाशक अधीन)

मुद्रक : छाबड़ा प्रेस
७९०/५,
चिराग दिल्ली
नई दिल्ली-११००१७

स्वर्गीय माता धन्वती (बूना)
स्वर्गीय पिता जनार्दन साधु
की पुण्य स्मृति में
सादर समर्पित

विषय सूची

क्र० विषय		पृष्ठ सं०
1. प्रस्तावना		(vii)
2. प्रास्तविक	डा० बलजिन्नाथ पण्डितः	(xxxiii)
3. कश्मीर पद्धति के महिम्न पाठ से पूर्व के तीन श्लोक		(xxxix)
4. मूलपाठ और परिशिष्ट		(xl)
5. श्री महिम्नस्तव श्लोक, सन्धिच्छेद, पदान्वय, अन्वयार्थ और व्याख्या		१—१४५
6. परिशिष्ट श्लोक, सन्धिच्छेद पदान्वय, अन्वयार्थ और टिप्पणी		१४६—१६७
7. पुस्तक सूची		१६९
8. शुद्धि-पत्र		१७१

प्रस्तावना

श्री शिवमहिम्नस्तोत्र अध्यात्म क्षेत्र में और संस्कृत साहित्य में एक महान कृति का स्थान रखता है। इस स्तुति में भगवान शिव के सगुण और निर्गुण स्वरूप की महिमा का अतीव सुन्दर और उत्कृष्ट वर्णन किया गया है। यह स्तुति भक्ति-उद्रेक से ओत-प्रोत है और साथ ही परमतत्त्व वर्णनात्मक भी है। यद्यपि हमारे वेद, शास्त्र, पुराण इत्यादि विभिन्न देवी-देवताओं और आचार्यों की अगणित स्तुतियों से भरे पड़े हैं तथापि उनमें से बहुत ही अल्प संख्या की ऐसी स्तुतियां हैं जो श्री शिवमहिम्नस्तोत्र की तुलना कर सकें। यह स्तुति विषयगाम्भीर्य, वर्णनात्मक शैली, उत्तम संस्कृत भाषा और कल्पनाशीलता से पूर्ण है। इसमें विभिन्न पौराणिक कथाओं को एक सुन्दर पुष्पहार में ऐसे गूंथा गया है जैसे एक कुशल माली सुगन्धित पुष्पों को भव्य हार में पिरोता है। इन कारणों से यदि इसे सर्वोत्कृष्ट स्तुति कहा जाए तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

२. इस स्तुति की मौलिक कृति में कितने श्लोक हैं इस पर कुछ मतभेद है।

(ख) श्री मधूसूदन सरस्वती जी ने इस स्तुति की एक बहुत ही वैदुष्यपूर्ण संस्कृत व्याख्या की है जिसकी पञ्चमावृत्तिः सन् १९२२ ई० में पांडुरंग जावजी के निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, से प्रकाशित हुई थी। १९२२ के पश्चात भी सम्भवतः कुछ और आवृत्तियां प्रकाशित हुई हों जो मेरे हाथ न लग सकीं। उन्होंने मूल ३१ श्लोक ही लिए हैं जिन पर उन्होंने व्याख्या की है। इसके अतिरिक्त ५ श्लोक और लिए हैं जिन पर व्याख्या नहीं की है परन्तु इस निर्देश से समाप्त किया, "इमे (३२-३६) श्लोकाः स्तोत्रान्तर्गता सुगमाश्चेति सर्वं भद्रम्"। अतः इन पांच श्लोकों को स्तोत्र के अन्तर्गत लेने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं। प्रकाशक ने ७ और श्लोक जोड़े हैं जो प्रायः इस स्तुति के पाठ के साथ ही पढ़े जाते हैं।

(ख) भारतीय साहित्य के अमरीकी संस्थान, पूना, के अध्यक्ष आचार्य डब्ल्यू नार्मन ब्रौन ने श्री शिवमहिम्नस्तोत्र पर काफी अनुसंधान और परिश्रम करके उसका सम्पादन, समालोचन और अंग्रेज़ी भाषा में अनुवाद करके एक सराहणीय काम किया है। इसे मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, ने १९६४ ई० में प्रथम बार प्रकाशित किया। इस

वरिष्ठ विद्वान ने भी श्लोकों की संख्या के बारे में कोई निश्चित मत प्रकट नहीं किया है। अपनी समालोचना में वह पहले २९ श्लोकों को ही मूल श्लोक मानना चाहते हैं क्योंकि २९वां श्लोक उनके विचार के अनुसार इस स्तोत्र का उपयुक्त उपसंहार है और यह २९ श्लोक शिखरिणी छन्द में हैं जबकि ३०वां हरिणी छन्द और ३१वां मालिनी छन्द में है। शेष श्लोकों को वे प्रक्षिप्त मानते हैं। तथापि, नर्मदा नदी के उत्तरीय तट पर स्थित श्री अमरेश्वर मन्दिर में रखे हुए पाषाणलेख के आधार पर इन्होंने भी श्री मधुसूदन सरस्वती की तरह ३१ श्लोक ही लिए हैं और कहते हैं कि उनकी दृष्टि में कोई ऐसी मूल पाठ्यपुस्तक इस स्तोत्र की नहीं छपी जिस में श्लोकों की संख्या इन ३१ से कम हो।

(ग) सारे भारतवर्ष में यह प्रथा है कि महिम्नस्तोत्र का मूल पाठ ३२ श्लोकों से किया जाता है और अन्त में प्रक्षिप्त एक, दो या इससे अधिक संख्या के श्लोकों को पढ़ा जाता है।

(घ) कश्मीर में पढ़े जाने वाले महिम्नस्तोत्र की कुछ अपनी ही विलक्षणता है। यहां के स्तोत्र के आरंभ में प्रस्तावना के रूप में तीन श्लोक हैं और मूल पाठ के ३२ श्लोकों में २ ऐसे श्लोक (इस पुस्तक में श्लोक संख्या २३

और ३०) हैं जो भारत के किसी अन्य महिम्नस्तोत्र में नहीं पाये जाते हैं। उनमें से एक श्लोक "वपुष्प्रादुर्भावात...(सं० ३०) आचार्य मम्मट् कृत काव्य प्रकाश के दशम उल्लास में उदाहरण के तौर पर दिया गया है। इन दो श्लोकों का उल्लेख केवल आचार्य ब्रौन ने स्तोत्र के परिशिष्ट में किया है और इन को मूल पाठ से भिन्न मानकर प्रक्षिप्त कहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह दो श्लोक कश्मीर के विद्वानों ने ही जोड़े हैं जैसे प्रारंभिक प्रस्तावना के ३ श्लोक जोड़े गए हैं और जो प्रक्षिप्त माने जाते हैं। इस प्रकार शेष भारत में पढ़े जाने वाले ३० श्लोक, कश्मीर के अपने दो अन्तर्वेशित श्लोकों से ही कश्मीर में महिम्नस्तोत्र के मूल ३२ श्लोकों के पाठ करने की प्रथा है और स्तोत्र के अन्त पर इस पुस्तक में ४३ वें श्लोक अथवा इससे अधिक (३३ से ४६ तक) श्लोकों से ही प्रायः पाठ को सम्पूर्ण किया जाता है।

(ङ) ऊपर के कथन के अनुसार इस पुस्तक में संख्या १ से ३४ तक, परन्तु २३वें और ३०वें श्लोक को छोड़कर, शेष भारत में महिम्नस्तोत्र के मूल ३२ श्लोकों का पाठ किया जाता है और परिशिष्ट में से एक या एक से अधिक श्लोक पढ़ कर पाठ को सम्पूर्ण किया जाता है। इस प्रकार से श्लोकों को पुनः क्रमांकित कर परिशिष्ट सहित ऊपर

२ (क), (ख) और (ग) में वर्णित संख्या को मानना चाहिए ।

३. (क) इस भव्य स्तोत्र के रचयिता के बारे में प्रसिद्ध है कि वे गन्धर्वराज पुष्पदन्त जी थे । गन्धर्व लोग देवलोकों में गायन-कार्य करते हैं । इन्हीं गन्धर्वों के राजा पुष्पदन्त नाम के थे जो तिरस्करिणी विद्या से सम्पन्न थे । वे शिवभक्त थे और भगवान शिव की पूजा के लिए अदृश्य होकर मर्त्यलोक में आकर एक राजा के उपवन से सुन्दर सुगन्धित पुष्प ले जाया करते थे । बहुत चौकसी और प्रयास करने पर भी राजा के भृत्य इत्यादि उसको पकड़ न सके । राजा ने पुष्प चोर की तिरस्करिणी विद्या को कुण्ठित करने के लिए शिव निर्माल्य रास्ते में छिड़कवाया । पूर्ववत् पुष्पदन्त जी निःशंक भाव से फिर आए परन्तु अनजाने में शिव निर्माल्य का उल्लंघन करने के कारण उसकी अदृश्य हो जाने की शक्ति सब कुण्ठित हो गई । ध्यान से देखने पर उसे इस आपत्तिजनक स्थिति का कारण ज्ञात हुआ । वे भगवान शिव, जो करुणा के सागर हैं और अभीष्ट वर देने वाले हैं, को प्रसन्न करने के लिए उनकी शरण में गए और उनकी स्तुति की । वही दिव्य स्तुति श्री शिवमहिम्नस्तोत्र के रूप में हमें प्राप्त हुई है । इसका उल्लेख हमें इस पुस्तक के ३९वें श्लोक में मिलता है ।

(ख) सामान्य रूप से इस स्तोत्र के रचयिता के बारे में (क) भाग में दिया गया विवरण लोक प्रसिद्ध है। परन्तु निम्नलिखित प्रकाशनों में स्तोत्र के रचयिता के बारे में कुछ और प्रकाश डाला गया है :—

(i) आचार्य डब्ल्यू नार्मन ब्राउन की श्री महिम्नस्तव पर व्याख्या, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली से १९६४ ई० में प्रकाशित।

(ii) महामण्लेश्वर श्री स्वामी काशिकानन्द की श्री महिम्नस्तव पर स्पन्दवार्त्तिक, श्री काशिकानन्द जी ट्रस्ट, आनन्दवन आश्रम, वंबई, से १९८३ ई० में प्रकाशित।

आचार्य ब्राउन की व्याख्या में (क) भाग में दिए गए विवरण का संक्षेप से कथन है परन्तु स्वामी काशिकानन्द जी के वार्त्तिक में इसका कोई उल्लेख नहीं है। आचार्य ब्राउन आगे लिखते हैं कि उन्होंने कुछ व्याख्याएं देखी हैं जिन में एक लोक कथा को उद्धृत किया गया है। इस कथा के अनुसार श्री शिवमहिम्नस्तोत्र के रचयिता सम्भवतः वही पुष्पदन्त हैं जिसका कथन कश्मीर के सुप्रसिद्ध कविवर श्री सोमदेव भट्ट द्वारा रचित कथासरितसागर में आया हुआ है। ये पुष्पदन्त भगवान शिव के गणों में से एक थे।

उन्होंने चुपके से वह अमर कथा सुनी जो भगवान शिव पार्वती को गुप्त रूप से सुना रहे थे। पुष्पदन्त ने वह कथा अपनी पत्नी को सुनाई जिसने फिर उस कथा को पार्वती को सुनाया। फिर क्या था पार्वती अत्यन्त क्रुद्ध हुई, पहले भगवान शिव पर, जिन्होंने नई ही कथा प्रथम बार गुप्त रूप से सुनाने का दावा किया था और निकली वह घिसी-पिटी कथा जिसका दूसरों को भी ज्ञान था, फिर उनका क्रोध टूट पड़ा पुष्पदन्त पर और उसके एक साथी पर जिसने उसके पक्ष में वकालत की थी। पुष्पदन्त जी देव-लोक से पदच्युत होकर मर्त्यलोक में एक मानव बने और उसकी शाप मुक्ति तब ही सम्भव थी जब अमर कथा देव-लोक से पदच्युत हुए दूसरे व्यक्ति को सुनाता। मर्त्यलोक में आकर पुष्पदन्त जी विख्यात व्याकरण वार्त्तिककार वररुचिकात्यायन बने और वही श्री महिम्नस्तोत्र के रचयिता हुए हों।

(ग) स्वामी काशिकानन्द जी के स्पन्दवार्त्तिक में भी ऊपर के प्रसंग का उल्लेख आया है। स्वामी जी ने इस विषय में और कुछ प्रसंग प्रस्तुत किए हैं और वह इस निश्चय पर पहुंचे हैं कि प्रसिद्ध व्याकरण वार्त्तिककार कात्यायन ही महिम्नस्तोत्र के रचयिता हैं।

(घ) आचार्य ब्राउन ने अंगीकार किया है कि वह श्री शिवमहिम्नस्तोत्र के रचयिता और रचना काल के बारे में किसी निश्चित परिणाम पर नहीं पहुंच सके।

(ङ) श्लोकों की संख्या मूल पाठ में ३२ ही मानी जाती है। दाँतों की संख्या भी ३२ ही होती है। रचयिता के नाम में भी दान्तों का और पुष्प का उल्लेख आता है। ऐसा लगता है कि इनका आपस में कुछ सम्बन्ध है। इस बारे में कई एक किंवदन्तियां हैं जिनमें से कुछ का ही मैं उल्लेख करूँगा।

(i) कश्मीर में यह लोक कथा प्रचलित है कि श्रीपुष्पदंत जी को जब राजसेवकों ने पकड़ लिया तो राजा की आज्ञा के अनुसार उन्हें कारागार में डाल दिया गया। वहां कारागार में शिव मन्दिर में जाकर उन्होंने भगवान शिव का स्तवन आरंभ किया और एक-एक श्लोक पर अपना एक-एक दाँत निकाल कर पुष्प के स्थान पर शिवलिंग पर अर्पण करता गया। ३२ दांतों के अर्पण करने पर ३२ श्लोक बने जो दिव्य महिम्नस्तोत्र के रूप में हमें प्राप्त हुए हैं। राजा को आकाशवाणी हुई उन्होंने पुष्पदन्त जी को कारागार से मुक्त कर दिया।

श्री पुष्पदन्त को सुन्दर पुष्प सरीखे दांत फिर प्राप्त हुए और इसी कारण वह तभी से पुष्पदन्त कहलाये ।

(ii) चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणी, से प्रकाशित, श्री शिवमहिम्नस्तोत्र में एक आख्यायिका का वर्णन आया है जो इस प्रकार है । जब पुष्पदन्त ने महिम्न को बनाया तों उन्होंने वह भगवान् शिव को सुनाया और वे अतिप्रसन्न हुए । इस पर पुष्पदन्त को अपने बनाए स्तोत्र पर गर्व हुआ । भगवान शिव जान गए । उन्होंने भृंगीगण को कहा कि मुँह तो खोलो । उसके ऐसा करने पर पुष्पदन्त ने देखा कि महिम्न के ३२ श्लोक ३२ दांतों पर लिखे हुए हैं । इससे भगवान शिव ने यह प्रकट किया कि पुष्पदन्त ने ये श्लोक नहीं बनाए वरन् यह तो उनकी (शिवजी की) अनादि स्तुति के श्लोक हैं ।

४. (क) श्री महिम्नस्तोत्र के रचना काल में भी वैमत्य है । आचार्य ब्राउन ने शिलालेखों का काल उन पर अंकित परन्तु अस्पष्ट तिथि के अनुसार १०६३ या ११६३ ई० लिया है । परन्तु इन से पूर्वकाल में लिखित संस्कृत कृतियों

में श्री महिम्नस्तोत्र के कुछ श्लोकों का कथन और उद्धरण आया हुआ है जिन के अनुसार महिम्नस्तोत्र का काल ९वीं शताब्दी हो सकता है। सारांश यह है कि श्री महिम्नस्तोत्र इतना लोकप्रिय हुआ था कि उसके श्लोकों का उद्धरण ९वीं शताब्दी की कृतियों में भी आया और ११वीं या १२वीं ई० शताब्दियों में इसको शिलाओं पर अंकित कर अमिट बना दिया गया।

(ख) स्वामी काशिकानन्द जी के अनुसार वार्त्तिककार वररुचि कात्यायन और पुष्पदन्त अभिन्न हैं अथवा ये तीनों नाम एक ही व्यक्ति के हैं जिन्होंने पाणिनीय अष्टाध्यायी पर विश्वविश्रुत वार्त्तिकग्रंथ की रचना की। यह काल तो ईस्वी पूर्व का है। अतः श्री शिवमहिम्नस्तोत्र की रचना ईसवी पूर्व किसी काल में हुई होगी यद्यपि इस के श्लोकों का उद्धरण ९वीं शताब्दी के काल से ही देखने को अभी तक उपलब्ध हुआ है।

५. (क) श्री पुष्पदन्त जी के जन्मस्थान के विवाद को आचार्य ब्राउन ने छेड़ा ही नहीं है। स्वामी काशिकानन्द जी ने लिखा है कि उनके जन्मस्थान के बारे में वैमत्य आता है। उन्होंने कुछ प्रसंग देकर यह दृष्टिकोण अपनाने का प्रयत्न किया है कि पुष्पदन्त जी का जन्म दक्षिण भारत में हुआ था।

(ख) व्याकरण महाभाष्य के रचयिता आचार्य पतंजलि ने भी वार्त्तिककार का दाक्षिणात्य ही बताया है (प्रिय-तद्धिता हि दाक्षिणात्या: इत्यादि)

(ग) अतिरिक्त साक्षी की अनुपस्थिति में इस विषय को यहां पर ही समाप्त किया जाता है।

६. श्री पुष्पदन्त रचित श्री शिवमहिम्नस्तोत्र के अतिरिक्त भी एक और प्राचीन महिम्नस्तव है इस बात से अधिकांश जनता अनभिज्ञ है। उस स्तव का नाम "परशम्भु महिम्नस्तव" है और इसके रचयिता भारत के विख्यात ऋषि दुर्वासा जी हैं। यह पुस्तक एन. राजम् एण्ड कं० वेपेरी, मद्रास ने १९४६ ई० में प्रकाशित की थी। यह पुस्तक अब अप्राप्य है।

(क) ऋषि दुर्वासा जी रचित परशम्भुस्तव एक उच्च कोटि का अमोघ स्तव है। इस में प्राचीन कालीन गूढ़ संस्कृत प्रयोग किया गया है जिसका ठीक-ठाक अर्थ बहुत कठिनता से लगता है। कदाचित् यही कारण है कि यह स्तव इतना लोकप्रिय नहीं बना जितना कि श्री पुष्पदन्त रचित श्री महिम्नस्तव।

(ख) भगवान दुर्वासा कृत स्तोत्र में अद्वैत शैव दर्शन और रहस्यमयी शैवी साधना के अनेकों गूढ़ रहस्य भरे पड़े

हैं। इस स्तोत्र के अधिकारी बड़े-बड़े प्रकाण्ड विद्वान ही हैं। साधारण जनता उसके रस का आस्वाद नहीं ले सकती है। इस कारण से भी वह इतना लोकप्रिय नहीं बन पाया। वह स्तोत्र एक उत्कृष्ट दार्शनिक दृष्टि को लेकर के रचा गया है, जबकि श्रीपुष्पदन्त वाला स्तोत्र पौराणिक गाथाओं के आधार पर बना है, अतः सब के लिए सुबोध होता हुआ काफी लोकप्रिय बन गया।

(ग) दोनों स्तोत्रों की तुलना करने पर यह ज्ञात हुआ कि कुछ-कुछ श्लोकों में बहुत समानता है और इससे यह भ्रम सा हो जाता है कि कदाचित् श्री पुष्पदन्त जी ने ऋषि दुर्वासा कृत स्तव से सहायता ली हो। उदाहरणतया श्री पुष्पदन्त रचित महिम्नस्तोत्र का १८वां श्लोक (रथः क्षोणी यन्ता......) ऋषि दुर्वासा कृत परशम्भु स्तव के एक श्लोक के साथ बहुत मिलता जुलता है। वह श्लोक नीचे उद्धृत है :—

साङ्गा भूमिः शताङ्गः शतधृतिरपि तत्सारथिः सप्तयस्ते
वेदा ब्रह्मैकवेद्याः पृथुतरचरणौ पुष्पवन्तौ तदक्षः।
मेरुस्तत्कीलबन्धः कमठपतिरिभास्तत्पृथुस्तम्भपङ्क्तिः
शेषस्तद्रज्जुबन्धस्तदुपरि पितृभूस्तत्र चिन्त्यो रथी त्वम्॥

इसी प्रकार और भी श्लोक हैं जिनकी दूसरे स्तव के श्लोकों के साथ काफी समानता है। परशम्भु स्तव इस

पुस्तक का विषय नहीं है परन्तु इसका कथन मैंने इस प्रस्तावना में जिज्ञासु भक्तजनों के लिए विशेषकर और सर्वसाधारण जनता के ज्ञान के लिए किया है।

७. श्री शिवमहिम्नस्तोत्र के कुछ श्लोकों में कहीं पाठान्तर भी है और कहीं-कहीं अशुद्ध शब्द भी प्रकाशित हुए हैं। इनका वर्णन नीचे किया जाता है :—

श्लोक सं० १. "स्वमतिपरिमाणावधि" प्रायः सभी प्रकाशनों में "परिमाण" के स्थान पर "परिणाम" छपा हुआ है। बुद्धि का परिणाम और फिर उसकी अवधि यह संघट्टन उपयुक्त नहीं है। रचयिता का आशय है कि प्रत्येक भक्त अपनी बुद्धि के परिमाण की सीमा के भीतर ही स्तुति करने के योग्य हो सकता है। परिमाण की अवधि परिमाप का बोधक है जो बुद्धि के साथ उपयुक्त विशेषण का कार्य करते हुए बुद्धि की सीमा का द्योतक है। "परिमाण" को "परिणाम" से ज्यादा उपयुक्त समझकर प्रयोग किया है।

श्लोक सं० ६ कुछ प्रकाशनों में "परिकरः" छपा है परन्तु शुद्ध शब्द "परिकरं" है और इसी को इस श्लोक में प्रयोग करना व्याकरण की दृष्टि से उपयुक्त है।

श्लोक सं० ११ "आसाद्य" का पाठान्तर "आपाद्य" किसी-किसी प्रकाशन में आया हुआ है। दोनों उपयुक्त हैं।

श्लोक सं० १६ "नटसि" का पाठान्तर "नृत्यसि" कहीं-कहीं आया है। दोनों अर्थ से तो उपयुक्त हैं, परन्तु छन्द की दृष्टि से 'नटसि' ही ठीक है।

श्लोक सं० २० "सम्प्रेक्ष्य" का पाठान्तर "उत्प्रेक्ष्य" है। दोनों उपयुक्त हैं केवल उपसर्ग का अन्तर है।

श्लोक सं० २१ "क्रतुभ्रंशः" के स्थान पर "क्रतुभ्रेषः" कहीं-कहीं आया है। दोनों उपयुक्त हैं।

श्लोक सं० २३ यह श्लोक प्रक्षिप्त माना जाता है। इस संबंध में मैंने ऊपर २ (घ) और श्लोक की व्याख्या में विद्वानों का विचार प्रस्तुत किया है।

इस श्लोक को आचार्य ब्राउन ने परिशिष्ट में जोड़ा है परन्तु उस में कुछ अशुद्धि है जिस कारण श्लोक का कोई अर्थ नहीं निकलता है। भक्तजनों के अवलोकन और ज्ञानार्थ मैं उस श्लोक को यथावत् नीचे उद्धृत करता हूं :

अपूर्वं लावण्यं विवसनतनोस्ते विमृषतां
मुनीनां दाराणां समजनि स कोऽप्यव्यतिकरः।
यतो भग्ने गुह्ये सकृदपि सपर्यां विदधतां
ध्रुवं मोक्षं लीलां किमपि पुरुषार्थं प्रसविते ॥

रेखांकित भाग को शुद्ध करके ही इस पुस्तक में मैंने श्लोक

को जोड़ दिया है। ऐसा करने से ही अर्थविकार और गुणविकार दोनों से मुक्ति मिली।

श्लोक सं० २६. "प्रमदसलिलोत्सञ्जितदृशः" इस श्लोक में "उत्संगितदृशः" के स्थान पर "उत्सञ्जितदृशः" क्यों अपनाया गया इसका विवरण श्लोक की व्याख्या के अन्तर्गत दिया गया है। संक्षेप में, व्याकरण की दृष्टि से और भाव और अर्थ की दृष्टि से उत्सञ्जित ही ठीक है जबकि "उत्संगित" शब्द का कोई तुक ही नहीं बनता।

श्लोक सं० ३१ "तदिदमति सर्वाय" वहुधा प्रकाशनों में "तदिदमितिसर्वाय" छपा है इसका सन्धिच्छेद इस प्रकार होगा—तत्+इदम्+इति+सर्वाय। इस में इति के प्रयोग से वही परिच्छिन अवस्था आती है जो श्लोक २७ में आती है। यह अव्यय समाप्ति सूचक है अर्थात् (तत्) वह (इदम्) यह (इति) बस इतना ही। फिर सर्वम् अनावश्यक बन जाता है। आशय तो यह है कि (तत्) वह—अपरोक्ष, (इदम्) यह—परोक्ष (अति सर्वाय)—इन परोक्ष अपरोक्ष से भी अधिक समस्त विश्व से अतिक्रान्त सर्वातिशयी सत्य रूपी आप जो हैं उसको मेरा बार-बार प्रणाम है। अथवा तद्=तो, इदम्=यह, नमः=नमस्कार, अतिसर्वाय=सर्वोत्तीण स्वरूप, ते=तुझको हो—तद् अति सर्वाय ते इदं

नमः (अस्तु) ऐसा अन्वय लगता है। ऐसी व्याख्या इस काश्मीर पाठ की बहुत अच्छी लगती है।

श्लोक सं० ३२ "सत्त्वोद्रिक्तौ" का पाठान्तर "सत्तवोद्रेके" भी है। दोनों ठीक हैं। परन्तु आचार्य ब्राउन ने "सत्तवोत्पत्तौ" का प्रयोग किया है। ऐसा उसने एक हस्तलिपि, जिसका फोटो भी दिया गया है, के आधार पर किया है।

इस श्लोक में रजस् और तमस् के बाहुल्य का प्रयोग किया गया है इसलिए यह उचित है कि सत्त्व की प्रधानता पर ही विश्व को सुख प्राप्ति होतो है। इसी कारण से और "रज" और "तम" के बाहुल्य के साथ समानता रखने के लिए मैंने श्लोक में "सत्त्वोद्रिक्तौ" का ही प्रयोग किया है।

आचार्य ब्राउन की पुस्तक में सत्तवोत्पत्तौ के साथ "मृद" छपा है जो स्पष्ट रूप से "मृड" के स्थान पर गलती से छपा है।

श्लोक सं० ३५ "सकलगुणवरिष्ठः" के स्थान पर कहीं-कहीं "सकलगणवरिष्ठः" आया है। मैंने सकलगुण-वरिष्ठः ही क्यों प्रयोग में लाया इसका वर्णन श्लोक की व्याख्या के अंतर्गत देखें। वैसे "सभी रुद्रगणों में उत्तम" ऐसा अर्थ भी ठीक लगता है।

८. श्री महिम्नस्तव के कुछ श्लोकों में पुराणों वाली कथाओं का वर्णन आया है। ये कथाएं निम्नलिखित पुराणों से ली गई हैं :—

(१) शिवपुराण
(२) स्कन्द पुराण
(३) मत्स्य पुराण
(४) नारदोय पुराण
(५) कूर्मपुराण

९. कश्मीर में श्री शिवमहिम्नस्तोत्र को व्यापक स्तर पर पढ़ा जाता है। शिवालयों में, तीर्थस्थलों पर और अनेक होम-हवन इत्यादि अवसरों पर इसका पाठ किया जाता है। मेरे हाथ भी इस दिव्य स्तोत्र की एक प्रति तब आई जब मैं आठवीं कक्षा का विद्यार्थी था। यद्यपि संस्कृत मेरा एक विषय था परन्तु इस भाषा पर मेरा इतना अधिकार नहीं था कि मैं इसको स्वयं पढ़ सकूँ परन्तु साथ में किसी अन्य संस्कृत विद्वान की सहायता से पढ़ने में भी संकोच आया। घर में भी पढ़ने से कुछ डरता था कि कहीं बुजर्गों की फटकार न पड़े। वे तो मेरे संस्कृत विषय लेने में ही नाराज थे। भाग्यवशात श्रावण पूर्णमासी कुछ ही दिनों के पश्चात् थी । मैं प्रतिवर्ष उस रात को प्रसिद्ध

नमः (अस्तु) ऐसा अन्वय लगता है। ऐसी व्याख्या इस काश्मीर पाठ की बहुत अच्छी लगती है।

श्लोक सं० ३२ "सत्त्वोद्रिक्तौ" का पाठान्तर "सत्तवोद्रेके" भी है। दोनों ठीक हैं। परन्तु आचार्य ब्राउन ने "सत्तवोत्पत्तौ" का प्रयोग किया है। ऐसा उसने एक हस्तलिपि, जिसका फोटो भी दिया गया है, के आधार पर किया है।

इस श्लोक में रजस् और तमस् के बाहुल्य का प्रयोग किया गया है इसलिए यह उचित है कि सत्त्व की प्रधानता पर ही विश्व को सुख प्राप्ति होतो है। इसी कारण से और "रज" और "तम" के बाहुल्य के साथ समानता रखने के लिए मैंने श्लोक में "सत्त्वोद्रिक्तौ" का ही प्रयोग किया है।

आचार्य ब्राउन की पुस्तक में सत्तवोत्पत्तौ के साथ "मृद" छपा है जो स्पष्ट रूप से "मृड" के स्थान पर गलती से छपा है।

श्लोक सं० ३५ "सकलगुणवरिष्ठः" के स्थान पर कहीं-कहीं "सकलगणवरिष्ठः" आया है। मैंने सकलगुण-वरिष्ठः ही क्यों प्रयोग में लाया इसका वर्णन श्लोक की व्याख्या के अंतर्गत देखें। वैसे "सभी रुद्रगणों में उत्तम" ऐसा अर्थ भी ठीक लगता है।

८. श्री महिम्नस्तव के कुछ श्लोकों में पुराणों वाली कथाओं का वर्णन आया है। ये कथाएं निम्नलिखित पुराणों से ली गई हैं :—

(१) शिवपुराण
(२) स्कन्द पुराण
(३) मत्स्य पुराण
(४) नारदीय पुराण
(५) कूर्मपुराण

९. कश्मीर में श्री शिवमहिम्नस्तोत्र को व्यापक स्तर पर पढ़ा जाता है। शिवालयों में, तीर्थस्थलों पर और अनेक होम-हवन इत्यादि अवसरों पर इसका पाठ किया जाता है। मेरे हाथ भी इस दिव्य स्तोत्र की एक प्रति तब आई जब मैं आठवीं कक्षा का विद्यार्थी था। यद्यपि संस्कृत मेरा एक विषय था परन्तु इस भाषा पर मेरा इतना अधिकार नहीं था कि मैं इसको स्वयं पढ़ सकूँ परन्तु साथ में किसी अन्य संस्कृत विद्वान की सहायता से पढ़ने में भी संकोच आया। घर में भी पढ़ने से कुछ डरता था कि कहीं बुजर्गों की फटकार न पड़े। वे तो मेरे संस्कृत विषय लेने में ही नाराज थे। भाग्यवशात श्रावण पूर्णमासी कुछ ही दिनों के पश्चात् थी। मैं प्रतिवर्ष उस रात को प्रसिद्ध

श्री शंकराचार्य पहाड़ी पर स्थित शिव मन्दिर में जाता था। उस पूर्णमासी को श्री शिव महिम्नस्तोत्र की पुस्तक को जेब में छिपाकर मैं श्री शंकराचार्य मन्दिर गया। वहां पर मैं अपने दूसरे साथियों से जान-बूझ कर बिछुड़ कर दूर एक शिला पर बैठ गया। यह शिला आसानी से देखने में नहीं आती थी। भक्तजनों की भीड़ होती है और वह दर्शन आदि में ही व्यस्त होते हैं। मैं भी मन्दिर में जाकर दर्शन कर आया और मन ही मन भगवान शिव को अपने छिपे मनोरथ से अवगत करा गया। फिर पूर्ण चन्द्रमा की अमृतवर्षा करती हुई चाँदनी में मैंने उस शिला पर श्री शिवमहिम्नस्तोत्र को अनेक बार पढ़ा। जब संतोष हुआ कि थोड़ा-बहुत पढ़ सकता हूं तब वापिस घर आया। वह था मेरा पहिला प्रयास। समय व्यतीत होता गया और महिम्नस्तोत्र कण्ठस्थ हो गया। मैंने दूसरों को पढ़ते हुए सुना था परन्तु बहुधा बिल्कुल ही अशुद्ध पढ़ा जाता था। पूछने पर मालूम हुआ कि स्तोत्र का अध्ययन पुस्तक से बहुतों ने नहीं किया है और अर्थ जानने की चेष्टा किसी ने नहीं की। कश्मीर में यद्यपि श्री शिवमहिम्नस्तोत्र पर कुछ संक्षिप्त अनुवाद वाली पुस्तकें हैं परन्तु मैंने कोई ऐसी नहीं देखी जो परिपूर्ण हो। इस कमी को दूर करने के लिए मैंने यह प्रयास किया है।

१०. श्री शिब महिम्नस्तोत्र का गहन अध्ययन मैंने परमपूज्य, परमश्रद्धेय चैतन्य ब्रह्मचारी योगीराज श्री स्वामी नन्दलाल जी महाराज, टिक्कर आश्रम, कुपवारा, कश्मीर और १०८ श्री स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती जी महाराज, हरिद्वार, के चरणकमलों में बैठकर किया है। यह दोनों महान विभूतियां समकालीन थीं और इन्होंने कश्मीर में दीर्घकालीन तपस्या की। दोनों ब्रह्मलीन हो चुके हैं।

११. इस पुस्तक को तैयार करने से पहले मैंने निम्नलिखित पुस्तकों का अवलोकन अध्ययन किया :—

	पुस्तक का नाम	अनुवादक/व्याख्याकार	भाषा	प्रकाशक
(१)	महिम्नस्तोत्रम्	श्री मधुसूदन सरस्वती	संस्कृत व्याख्या सहित	पांडुरंग जावजी निर्णय सागर प्रेस बम्बई
(२)	महिम्नस्तव	आ० डब्ल्यू नार्मन ब्राउन	अंग्रेजी व्याख्या सहित	मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली
(३)	श्रीशिवमहिम्नस्तोत्रम्	स्वामी काशिकानन्द	संस्कृत हिंदी स्पन्द वार्तिक सहित	आनन्दवन, आश्रम, बम्बई,
(४)	शिवमहिम्नस्तोत्रम्	स्वामी पवित्रानन्द	अंग्रेजी	अद्वैत आश्रम, कलकत्ता,

(५)	श्री शिवमहिम्न-स्तोत्रम्	पं० श्रीनारायणपति शर्मा	संस्कृत/हिंदी व्याख्या सहित	चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी,
(६)	श्री शिवमहिम्न-स्तोत्रम्	स्वामी विद्यानन्द गिरिजी व रामानन्द शास्त्री	हिन्दी	कैलाश आश्रम, ऋषिकेश
(७)	श्री शिवमहिम्न-स्तोम्	पाण्डेय रामनारायण दत्त शास्त्री	हिन्दी सरल पद्यानुवाद	गीता प्रेस, गोरखपुर,
(८)	श्री शिवमहिम्न-स्तोत्रम् (स्वाध्याय सुधा अंतर्गत)		हिन्दी	गुरुदेव सिद्धपीठ गणेशपुरी, (महाराष्ट्र)

(९) शिवमहिम्नस्तोत्रम्	पं० गोमती प्रसाद मिश्र	हिन्दी	भार्गव बुक डिपो, वाराणसी
(१०) शिवमहिम्नस्तोत्रम्	पं० ज्वालाप्रसाद चतुर्वेदी	हिन्दी	हरभजनसिंह एण्ड संस हरिद्वार
(११) शिवमहिम्नस्तोत्रम्		हिन्दी	पंजाबी पुस्तक भण्डार, दिल्ली,
(१२) श्री महिम्नः स्तोत्रम्	पं० जियालाल सराफ	कश्मीरी पद्य	नार्मल प्रेस, श्रीनगर (कश्मीर)
(१३) श्रीमहिम्नः स्तोत्रम्	पं० दीनानाथ कौल साधु	उर्दू	पं० ईश्वर कौल एण्ड ब्रदर्स, श्रीनगर (कश्मीर)

(१४)	श्री महम्निः स्तोत्रभ्	पं० श्यामलाल साधु	कश्मीरी पद्य	श्रीनगर (कश्मीर)
(१५)	श्री महिम्नः स्तोत्रम्	पं० पुष्करनाथ कौल पोशमुत	कश्मीरी पद्य	तीर्थराज प्रबंधक कमेटी अनन्तनाग कश्मीर

१२. श्री मधुसूदन सरस्वती की व्याख्या शिव और विष्णु उभयपक्षीय है। स्वामी काशिकानन्द जी की व्याख्या शिवपक्षीय है उभयपक्षीय तो केवल शब्दार्थ को ही अपनी पुस्तक के अन्त में उन्होंने प्रस्तुत किया है। हरि और हर में कोई अन्तर नहीं अतः मैंने शब्दार्थ और व्याख्या को अपनी रुचि के अनुसार केवल शिवपक्षीय ही रखा है।

१३. यह पुस्तक सर्वसाधारण जनता, विशेषकर कश्मीरी जनता की आवश्यकताओं को दृष्टि में रखते हुए बनाई गई है। इसमें श्लोक, सन्धिच्छेद, पदान्वय, अन्वयार्थ और कुछ व्याख्या/टिप्पणी दी गई है। सन्धिच्छेद शुद्ध उच्चारण में, पदान्वय और अन्वयार्थ अर्थ में, तथा व्याख्या-टिप्पणी विस्तृत जानकारी देने में सहायक सिद्ध होंगें। मैंने पुस्तक को यथासंभव व्यापक बनाने का प्रयास किया है। शिव महिम्नस्तोत्र पर एक ऐसी व्यापक पुस्तक के अभाव में जो शून्य स्थान था वह मुझे कितने समय से खल रहा था। इस पुस्तक के प्रकाशन से अब वह शून्य स्थान भर गया और मेरी चिरकालीन इच्छा पूरी हुई। आशा है कि भक्तजन इससे लाभान्वित होंगे और इस दिव्य स्तोत्र के रसिक बन जाएंगे।

१४. इस प्रयास में कुछ समस्याएं और बाधाएं

आयीं। मैं हताश हो गया कि यह पुस्तक कभी प्रकाशित न हो सकेगी। भगवान शिव की कृपा से मेरे अन्दर एक बिजली सी चौंध गई और मेरे ज्ञान में श्री रणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जम्मू, के महाप्राज्ञ आचार्य डा० बलजिन्नाथ पंडित एम० ए०, एम. ओ. एल., पी. एच. डी. कश्मीर शैवदर्शन प्रवीण, का प्रतिभाशाली नाम आया। मेरा उनके साथ कोई सम्पर्क या सम्बन्ध नहीं था। केवल नाम सुना था, प्रसिद्धि सुनी थी। फिर क्या था मैं कृतार्थ हो गया। उन्होंने मेरे इस प्रयास को सराहा। अपना अमूल्य समय देकर इसका संशोधन किया, संवर्धन किया और यह पुस्तक निर्णीत अवस्था में प्रकाशित होकर आप के पास पहुंची। मैं उनका अतिआभारी हूं।

१५. मेरे इस प्रयास को सफल बनाने में आचार्य महाराज कृष्ण कौल, अंग्रेजी विभाग, अमरसिंह कालेज, श्रीनगर (कश्मीर), आचार्य त्रिज कृष्ण वल्ली, हिन्दी, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, श्री प्रेमलाल शर्मा, अवकाश प्राप्त निदेशक (हिन्दी), भारत सरकार, और श्री गौरी शंकर रैना, दिल्ली दूरदर्शन के वरिष्ट अधिकारी ने अपना सहयोग दिया। मैं इन महानुभावों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूं।

१६. यह प्रकाशन छपाई में सुन्दर हो और कोई त्रुटि न रह पाए इसके लिए मैंने बहुत सावधानी बरती है फिर भी यदि कुछ त्रुटियां रह गई हों तो विद्वानजनों और भक्तजनों से क्षमाप्रार्थी हूं ।

१७. मैं इस पुस्तक को निःशुल्क बांटना चाहता था परन्तु मुझे परामर्श दिया गया कि इसका कुछ मूल्य रखा जाए । निःशुल्क रूप में यथोचित् आदर और सावधानी बरती नहीं जाती । अतः नाम मात्र ही इसका यथासम्भव न्यूनतम मूल्य रखा जाएगा ।

१८. मेरी एक विनम्र विनती है कि श्री शिवमहिम्नःस्तोत्रम्, जो वेद तुल्य है, को आदरपूर्वक पवित्र स्थान पर रखा जाए और श्रद्धायुक्त इसका पाठ और अध्ययन किया जाए ।

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥

प्रेमनाथ साधु

प्रास्ताविक

श्री शिवमहिम्नस्तोत्र की यह टीका मेरे पास संशोधन, परिमार्जन आदि के लिए आई। अतीव व्यस्त होते हुए भी अपने मित्र प्रो० श्री महाराजकृष्ण जी कौल के आग्रह से मैं ने इस कार्य को कर देना स्वीकार किया। आगे पाण्डुलिपि को देखने पर जब उसकी तुलना मैं वर्तमान युग के हिन्दी लेखकों की कृतियों के साथ तथा परम्परागत संस्कृत टीकाकारों की रचनाओं के साथ ज़रा भर भी करने लगा तो मेरी रुचि मन्द सी पड़ गई। फिर टीका के कुछ एक पृष्ठों को पढ़ लेने पर मेरे मन में ये बातें आईं—

(१) इस टीका के रचयिता श्री प्रेमनाथ जी साधु बड़े ही श्रद्धालु शिवभक्त हैं (२) उन्हें शिवमहिम्नस्तोत्र के साथ अतीव घना प्रेम है (३) उनके हृदय में इस लोकप्रिय शिवस्तोत्र के यथार्थ पाठ के और यथार्थ व्याख्या के प्रचार के प्रति प्रबल उत्साह है। (४) यद्यपि वे संस्कृत भाषा के व्याकरण को नहीं जानते हैं और यद्यपि लचीली हिन्दी में लिखने का उन्हें अभ्यास नहीं, फिर भी भक्तोपयोगी भाषा में स्तोत्र के भावों को भली भान्ति अभिव्यक्त

कर सकते हैं। (५) उनकी भाषा और शैली दोनों से ही शिवभक्तों को और महिम्नस्तोत्र के रसिकों के हृदय को काफी सन्तोष मिल सकता है। (६) यद्यपि टीका की भाषा कश्मीरी ढङ्ग की हिन्दी है फिर भी स्तोत्र के पदार्थ और भावार्थ को समझा देने में काफी क्षमता इसमें है।

इन ऊपरोक्त सभी बातों को विचार में रखते हुए मैं ने इस टीका का यथासम्भव संशोधन कर दिया। जहां-जहां व्याकरण आदि की या व्याख्या सम्बन्धी त्रुटियां दीख पड़ीं, वहां वहां यथोचित संशोधन, परिवर्तन, संवर्धन आदि किया। सारी टीका का परिष्कार करने के लिए मेरे पास समय नहीं था। टीका को भक्तों के लिए उपयोगी समझते हुए मैंने इसे इसी रूप में प्रकाशित करने की अनुमति दे दी। तदनुसार श्री साधु महोदय ने इसे प्रकाशित कर दिया।

इस टीका के समेत इस स्तोत्र रत्न को प्रकाशित करने की अनुमति और तदर्थ प्रोत्साहन देने में एक और विशेष कारण बना वह यह है—शिवमहिम्नस्तोत्र का पाठ सारे भारत में अपढ़ जनता भी करती रहती है और पढ़े लिखे विद्वान महानुभाव भी करते रहते हैं। मन्दिरों, मठों और संस्कृत विद्यापीठों के छात्रावासों में इस स्तोत्र का सामूहिक पाठ भी प्रायः किया जाता है। मुझे अनेक बार

यह जानते हुए बड़ा खेद होता रहा कि संस्कृत विद्यापीठों में भी कई एक श्लोकों के अशुद्धपाठ का ही गायन होता है। विद्वान् महानुभाव भी पाठ का संशोधन करने में कोई भी दिलचस्पी नहीं लेते। जतला देने पर भी इस बात की ओर ध्यान नहीं देते। श्री साधु महोदय ने पाठभेदों पर भी काफी प्रकाश डाला है। परन्तु कई एक पदों में अशुद्धपाठ रह ही गया था। तो फिर मैंने यह सोचा कि इस स्तोत्र का मूलपाठ एक बार सर्वथा शुद्ध रूप में प्रकाशित हो जाए तो उसके प्रचार से अनेकों स्थानों पर शिवभक्त इस के सर्वथा शुद्ध पाठ का ही गायन करने लग जाएं। इस विचार से भी मैंने श्री साधु महोदय को इस कार्य को पूरा करने के प्रति प्रोत्साहित कर दिया। अतः तदर्थ मैंने व्याकरण शास्त्र, मीमांसा शास्त्र और छन्दः शास्त्र के सिद्धान्तों को दृष्टि में रखते हुए कई एक श्लोकों में मूल-पाठ का शोधन किया। उदाहरण के तौर पर—छठे श्लोक में "परिकरो" के स्थान पर "परिकरं" शब्द को रखा, क्योंकि यहां कर्मणि द्वितीया ही शुद्ध है, प्रथमा नहीं। तेरहवें श्लोक में भावोत्कर्ष की दृष्टि से "कस्याप्युन्नत्यै" के बदले "कस्या उन्नत्यै" ऐसा पाठ रखा। उन्नीसवें श्लोक में "भक्त्युद्रेकात्" के स्थान पर "भक्त्युद्रेकः" ऐसा कर दिया, क्योंकि परिणाम भक्ति के उस उद्रेक का ही हुआ, हरि का नहीं हुआ। इकतीसवें पद्य में "इति सर्वाय" के

स्थान पर "अतिसर्वाय" पद रखा। इस श्लोक में दोनों परस्पर विरोधी विशेषणों का प्रयोग आया है। तदनुसार "सर्वस्मै" पद का विरोधी पद "अतिसर्वाय"—(सर्वस्यादति-क्रान्ताय) पद के प्रयोग से ही एक तो विरोधाभास अलङ्कार की शोभा बढ़ती है, दूसरे "इति सर्वाय" पद प्रयोग की व्याख्या खींच तान करने पर भी ठीक नहीं उतरती है।

तेईसवें पद्य में "कोप्व्यतिकरः" के स्थान पर "कोऽपि व्यतिकरः" ऐसा पाठ रखा, क्योंकि कोप तो मुनियों की स्त्रियों ने ज़राभर भी किया हो नहीं, केवल उनके मन में कोई (कामवासनामय) भावव्यतिकर उद्बुद्ध हो गया जिसके फलस्वरूप मुनियों के शाप से गुह्याङ्ग का भङ्ग हो गया। इस पद्य के ऐसे पाठ और ऐसी व्याख्या के प्रति मुझे प्रो० श्री नीलकण्ठ जी गुरटू से भी परामर्श मिला। इनमें से कई एक पाठ भेद किसी किसी अन्य संस्करण में भी छपे हैं, परन्तु सर्वथा शुद्ध पाठ मुझे किसी भी संस्करण में नहीं मिला। तो यदि श्री साधु महोदय के द्वारा प्रकाशित किए जा रहे इस अभिनव संस्करण से शिवमहिम्नस्तोत्र के शुद्ध पाठ का प्रचार कहीं कहीं होने लग जाए, तो मुझे बड़ा हो संतोष होगा।

मुद्रक की असावधानी के कारण और प्रूफशोधन के कार्य में किसी संस्कृतज्ञ विद्वान की सहायता के न

मिल सकने के कारण कई एक स्थानों पर अशुद्धियां आ ही गई हैं। मूलपाठ का शुद्धरूप भक्त जनता के सामने एक बार आ ही जाए, इस प्रयोजन के लिए मैं मूल श्लोकों के विषय में एक शुद्धिपत्र भी तैयार करके भेज रहा हूं। पाठक महानुभाव श्लोकों को तदनुसार शुद्ध करके ही स्तोत्र का पाठ किया करें, ऐसा मेरा सुझाव है। टीका भाग में भी जो जो छापे की त्रुटियां आ गई हैं उन्हें पाठक महानुभाव स्वयं शुद्ध करें।

बलजिन्नाथ पण्डितः
शोधनिदेशकः,
शैवदर्शनकोष परियोजना
श्री रणवीर विद्यापीठ, जम्मू।

जम्मू
२३.७.९०

श्री शिवमहिम्नस्तोत्रम्

(काश्मीर पद्धति के पाठ से पूर्व के तीन श्लोक)

आधीनामगदं दिव्यं व्याधीनां मूलकृन्तनम् ।
उपद्रवाणाम् दलनं महादेवम् उपास्महे ॥१॥

अहं पापी पापक्षपणनिपुणः शंकर भवान्
अहं भीतो भीताभयवितरणे ते व्यसनिता ।
अहं दीनो दीनोद्धरणविधिसज्जस्त्वमितरन्
न जानेहं वक्तुं कुरु सकल शौचे मयि कृपाम् ॥२॥

जनास्त्वत्पादाब्जश्रवणमननध्याननिपुणाः
स्वयं ते निस्तीर्णा न खलु करुणा तेषु करुणा ।
भवे लीने दीने मयि मननहीने न करुणा
कथं नाथ ख्यातः त्वमसि करुणासागर इति ॥३॥

—:०:—

ॐ

।। अथ श्री शिवमहिम्नस्तोत्रम् ।।

ॐ श्री गणेशाय नमः

। श्री पुष्पदन्त उवाच ।

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिमाणावधि गृणन्-
न्ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः ।।१।।

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ।
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ।।२।।

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन्किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् ।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन्पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता ।।३।।

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्
त्रयीवस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु ।
अभव्यानामस्मिन्वरद रमणीयामरमणीं
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ।।४।।

किमीहः किंकायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च ।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः ॥५॥

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति ।
अनीशो वा कुर्याद्भुवनजनने कः परिकरं
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे ॥६॥

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥७॥

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालं चेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम् ।
सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रूप्रणिहितां
न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥८॥

ध्रुवं कश्चित्सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये ।
समस्तेऽप्येतस्मिन्पुरमथन तैर्विस्मित इव
स्तुवञ्जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता ॥९

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरिञ्चिर्हरिरधः
परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः ।
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ॥१०॥

अयत्नादासाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान् ।
शिरःपद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम् ॥११॥

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनं
बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः ।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः ॥१२

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सती-
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयत्रिभुवनः ।
न तच्चित्रं तस्मिन्वरिवसितरि त्वच्चरणयो-
र्न कस्या उन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ॥१३॥

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा-
विधेयस्यासीद्यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः ।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभंगव्यसनिनः ॥१४॥

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः ।
स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्-
स्मरः स्मर्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्यः परिभवः ॥१५॥

मही पादाघाताद्व्रजति सहसा संशयपदं
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् ।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥१६॥

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते ।
जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः ॥१७॥

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति ।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः ॥१८॥

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ॥१९॥

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते ।
अतस्त्वां संप्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः ॥२०॥

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता-
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः ।
क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ॥२१॥

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा ।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः ॥२२॥

अपूर्वं लावण्यं विवसनतनोस्ते विमृशतां
मुनीनां दाराणां समजनि स कोऽपि व्यतिकरः ।
यतो भग्ने गुह्ये सकृदपि सपर्यां विदधतां
ध्रुवं मोक्षोऽश्लीलं किमपि पुरुषार्थं प्रसवि ते ॥२३॥

स्वलावण्याशंसाधृतधनुषमह्नाय तृणव-
त्पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि ।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरत देहार्धघटना-
दवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः ॥२४॥

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-

श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः ।

अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं

तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मङ्गलमसि ॥२५॥

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः

प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः ।

यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्ज्यामृतमये

दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान् ॥२६॥

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-

स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।

परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं

न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि ॥२७॥

त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-

नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति ।

तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः

समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम् ॥२८॥

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सह महां-

स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ।

अमुष्मिन्प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि

प्रियायास्मै धाम्ने प्रणिहितनमस्योऽस्मि भवते ॥२९॥

वपुष्प्रादुर्भावादनुमितमिदं जन्मनि पुरा
पुरारे नैवाहं क्वचिदपि भवन्तं प्रणतवान् ।
नमन्मुक्तः संप्रत्यतनुरहमग्रेऽप्यनतिमान्
महेश क्षन्तव्यं तदिदमपराधद्वयमपि ॥३०॥

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः ।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमतिसर्वाय च नमः ॥३१॥

बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ।
जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥३२॥

कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदं
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः ।
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधा-
द्वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥३३॥

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तवगुणानामीश पारं न याति ॥३४॥

परिशिष्ट

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले-
ग्रंथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ।
सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥३५॥

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेत-
त्पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः ।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र
प्रचुरतरधनायुःपुत्रवान्कीर्तिमांश्च ॥३६॥

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ।
अघोरान्नापरो मंत्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥३७॥

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाः क्रियाः ।
महिम्नस्तवपाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३८॥

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शिशुशशिधरमौलेर्देवदेवस्य दासः ।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषा-
त्स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥३९॥

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः ।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥४०॥

आसमाप्ति शिवं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्वभाषितम् ।
अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम् ॥४१॥

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः ।
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः ॥४२॥

श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्बिषहरेण हरप्रियेण ।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥४३॥

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर ।
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः ॥४४॥

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं यः पठेन्नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥४५॥

यदक्षरं पदं भ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर ॥४६॥

इति श्री शिवमहिम्नस्तोत्रं सम्पूर्णम्

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

आधीनामगदं दिव्यं व्याधीनां मूलकृन्तनम् ।
उपद्रवाणाम् दलनं महादेवम् उपास्महे ॥१॥

संधिच्छेद : आधीनाम् + अगदम दिव्यम् व्याधीनाम् मूल + कृन्तनम् उपद्रवाणम् दलनम् महा + देवम् उपास्महे ।

पदच्छेद : आधीनाम् दिव्यम् अगदम् व्याधीनाम् मूल-कृन्तनम् उपद्रवाणम् दलनम् महादेवम् उपास्महे ।

अन्वयार्थ : **आधीनाम्** = मानसिक कष्टों के लिए, **दिव्यम्** = दिव्य, अलौकिक, **अगदम्** = औषधि हैं, **व्याधीनाम्** = शारीरिक कष्टों को, **मूलकृन्तनम्** = सम्मूल नाश करने वाले, जड़ से उखाड़ फेंकने वाले, **उपद्रवाणाम्** = उपद्रवों को, बाधाओं को, **दलनम्** = रौंद डालने वाले, **महादेवम्** = देवादिदेव महादेव की, **उपास्महे** = मैं उपासना करता हूं ।

व्याख्या : आम कहावत है कि शरीर आधी व्याधियों का घर है; तथा-कथित आधुनिक पश्चिमी सभ्यता हमारे देश में जोर पकड़ती जाती है। उसके हम आंख बन्द करके गुलाम होते जा रहे हैं। अपनी संस्कृति और सभ्यता को भूलते जा रहे हैं। इस कारण हमारा खाना-पीना, उठना-बैठना इत्यादि सब बिगड़ चुका है। फलस्वरुप शारीरिक क्लेश और मानसिक तनाव बढ़ोतरी पर हैं। ऐसी अवस्था में अध्यात्म मार्ग पर उन्नति करना संभव नहीं। जब तक शरीर स्वस्थ न हो, मन शांत न हो, वातावरण अनुकूल न हो, तब तक ईश्वर चिन्तन निर्विघ्न नहीं हो सकता है। एक रोगग्रस्त मनुष्य कुछ नहीं कर सकता। इसीलिए कहा है "शरीरं आद्यम् खलु धर्म-साधनम्"। इन सब क्लेशों से निवृत्ति दिलाने वाले एक देवादिदेव महादेव ही हैं जिनकी शरण में भक्त जाना चाहता है। वे चाहें तो इन सब क्लेशों को दूर करके हमारे लिए पथ को निष्कंटक और सुगम करेंगे। इस विचार से प्रेरित भक्त भगवान शिव की उपासना में अग्रसर हुआ।

अहं पापी पापक्षपणनिपुणः शंकर भगवान्
अहं भीतो भीताभयवितरणे ते व्यसनिता ।
अहं दीनो दीनोद्धरणविधिसज्जस्त्वमितरन्न
जानेहं वक्तुं कुरु सकल शौचे मयि कृपाम् ।।२।।

संधिच्छेद : अहम् पापी पाप + क्षपण + निपुणः शंकर भवान् अहम् भीतः भीता + अभय + वितरणे ते व्यसनिता अहम् दीनः दीन + उद्धरण + विधि + सज्जः + त्वम् + इतरत् + न जाने + अहम् वक्तुम् कुरु सकल शौचे मयि कृपाम् ।

पदच्छेद : अहम् पापी शंकर भवान् पापक्षपणनिपुणः अहम् भीतः ते भीताभयवितरणे व्यसनितः अहम् दीनः दीन + उद्धरण + विधि + सज्जः त्वम् इतरत् अहम् न जाने वक्तुम् मयि सकल शौचे कृपाम् कुरु ।

अन्वयार्थ : **अहम्**=मैं, **पापी**=पापी हूं, **शंकर**=और हे शंकर, **भवान्** = आप, **पापक्षपणनिपुणः** = पापों को दूर फेंकने में अथवा नाश करने में चतुर हैं, निपुण हैं, **अहम्** = मैं, **भीतः** = डरा हुआ हूं, **ते** = आप, **भीताभयवितरणे** = डरे हुओं

को अभयदान करने में, **व्यसनिता** = सदा तत्पर हैं, **अहम्** = मैं, **दीनः** = दीन, आर्त हूं, **दीन + उद्धरण + विधि + सज्जः** = दीनों का उद्धार करने की विधि में तैयार, **त्वम् इतरत्** = आप से किसी और बात को, **अहम्** = मैं, **न जाने** = नहीं जानता, **वक्तुम्** = जिसका वर्णन करूँ, **मयि** = मेरो, **सकल शौचे** = सारी शुद्धताई करने के विषय में, **कृपाम कुरु** = कृपा करें ।

व्याख्या : भगवान शिव पापों का नाश करने में, भयभीत हुओं को अभयदान देने में और दीनों का उद्धार करने में निपुण हैं। भक्त उनसे प्रार्थना करता है कि उसका मन निर्मल हो जाए ताकि उस मन के निर्मल शीशे में सत्य के दर्शन कर सके । मन के शुद्ध होने पर ही अध्यातम मार्ग में आत्मानुभव और आत्म-साक्षात्कार होना निश्चित है । पापी, भयभीत, आर्त और इन्द्रियों के विषयों का उपभोग करते रहने से मलिन हुए मन वाले भगवान शिव की शरण में जाते हैं क्योंकि वहां उनका पूर्ण उद्धार होना निश्चित है। रावणक्रन्दना-

स्तुति में रावण भगवान शिव से यों सम्बोधित हुए हैं —

यदि नास्मि महापापी यदि नास्मि भयातुरो ।
यदि नेन्द्रियसंसक्तः तत्कोर्थः शरणे मम ।।

यदि मैं महापापी न हूं (होता), यदि मैं भयभीत न हुआ होता और यदि मैं इन्द्रियों में इतना आसक्त न होता तो फिर मैं किस अर्थ से अथवा उद्देश्य से आपके शरण में जाता ।

जनास्त्वदपादाब्ज श्रवणमननध्याननिपुणः
स्वयं ते निस्तीर्णा न खलु करुणा तेषु करुणा ।
भवे लीने दीने मयि मननहीने न करुणा
कथं नाथ ख्यातः त्वमसि करुणासागर इति ।।३।।

संधिच्छेद : जनाः + त्वत् + पाद + अब्ज श्रवण + मनन् + ध्यान + निपुणः स्वयम् ते निस्तीर्णा न खलु करुणा तेषु करुणा भवे लीने दीने मयि मनन् + हीने न करुणा कथम् नाथ ख्यातः त्वम् + असि करुणा + सागर इति ।

पदच्छेद : त्वत् पादाब्ज श्रवण मननध्यान निपुणः जनाः ते स्वयम् निस्तीर्णा तेषु करुणा खलु न करुणा भवे लीने दीने मननहीने मयि न करुणा नाथ त्वम् करुणासागर इति कथम् ख्यातः असि ।

अन्वयार्थ : **त्वत्** = आपके **पादाब्ज** = चरणकमलों के, **श्रवण मनन ध्यान निपुणः** = श्रवन मनन और ध्यान करने में निपुण जो, **जनाः** = लोग हैं, **ते** = वे, **स्वयम्** = स्वयम् ही, **निस्तीर्णा**

= भवसागर तर जाते हैं, **तेषु** = उन पर, **करुणा** = कृपा अथवा दया करना, **खलु** = वास्तव में, **न करुणा** = दया नहीं कहला सकती, **भवे** = संसार में, **लीने** = लीन और लिप्त, **दीने** = दीन, **मननहीने** = आपके चरणकमलों का मनन करने से विहीन, **मयि** = मुक्त पर यदि, **न करुणा** = कृपा नहीं करेंगे तो, **नाथ** = स्वामी, **त्वम्** = आप, **करुणासागर** = दयासागर, **इति** = इस उपाधि से, **कथम्** = कैसे, **ख्यातः** = जगत में विख्यात, असि = हैं, कहलाएंगे ।

व्याख्या : ईश्वर प्राप्ति में हमारी साधना तभी फलीभूत हो सकती है जब ईश्वर की कृपा हो जाए । उनकी कृपा से ही उनको जाना जा सकता है ।

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई ।
जानत तुम्हहि तुम्हई होइ जाई ।। (तु० रा०)

अध्यात्म पथ में पांच कृपाओं की आवश्यकता होती हैं और वह हैं (१) संस्कार कृपा (२) मन की कृपा (३) शास्त्र कृपा (४) गुरू कृपा (५) ईश्वर कृपा । जो साधक इस पथ पर चल कर वेद शास्त्रों का श्रवण

करके उन पर मनन करते हैं और ईश्वर के चरण-कमलों के ध्यान में निरन्तर लगे रहते हैं तो ऐसे साधक ईश्वर कृपा के अधिकारी हो जाते हैं। समय आने पर ईश्वर कृपा हो ही जाती है और वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करते हैं।

इस श्लोक में भक्त ईश्वर से कहता है कि यदि आपने अधिकारी साधकों पर कृपा की तो वह कृपा वास्तव में कृपा नहीं कहला सकती। कृपा करनी है तो मुझ जैसे पतित जीव पर कर जो इस संसार सागर में डूबा हुआ है, विवेकहीन है, मनन और ध्यान से विहीन, दीन और दुःखी बना हुआ है। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो आप विश्व-विख्यात "करुणासागर" की उपाधि से कैसे विभूषित हो सकते हैं।

रावणकृत दीनक्रन्दनास्तुति में रावण भी भगवान शिव को कुछ ऐसे ही सम्बोधित करते हैं :—

हा हतोस्मि विनष्टोस्मि दष्टोस्मि चपलेन्द्रियैः।
भवार्णव निमग्नोस्मि मां त्रातुं किम् नार्हसि॥

आर्त्तो मद्सदृशो नान्यस्त्वत्तो नान्यः कृपापरः।
तुल्य एवावयोर्योगः कथं नाथ न पासि माम्॥

ॐ

॥ अथ श्रीशिव महिम्नः स्तोत्रम् ॥

ॐ श्रीगणेशाय नमः ।

श्री पुष्पदन्त उवाच ।

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिमाणावधिगृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः ॥१॥

संधिच्छेद : महिम्नः पारम् ते परम + अविदुषो यदि + असदृशी स्तुतिः + ब्रह्मा + आदीनाम् + अपि तत् + अवसन्ना + त्वयि गिरः अथ + अवाच्यः सर्वः स्व + मति + परिमाण + अवधि गृणन् मम + अपि + एषः स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः

पदच्छेद : हर ते महिम्नः परम् पारम् अविदुषः स्तुति यदि असदृशी तद् ब्रह्मादीनाम् अपि गिरः त्वयि

अवसन्नाः अथ सर्वः स्वमति परिमाण् अवधि गृणन् अवाच्यः, स्तोत्रे मम अपि एषः परिकरः निरपवादः ।

अन्वयार्थ : **हर**=पाप और अज्ञान के हरने वाले हे शिव, **ते**=आपकी, **महिम्नः**=महिमा के, **परम् पारम्**=दूसरे तट को या अन्तिम सीमा को, **अविदुषः**=न जानने वाले के द्वारा की गई, **स्तुतिः**=स्तुति, **यदि**=अगर, **असदृशी**=योग्य नहीं अथवा अननुरूप है, **तत्**=तब तो, **ब्रह्मादीनामपि**=ब्रह्मा आदि की भी, **गिरः**= अस्तुतियां, **त्वयि**=आपके विषय में, **अवसन्नाः** =अयोग्य हैं, **अथ**=और यदि, **सर्वः**=सभी, **स्वमति**=अपनी बुद्धि की, **परिमाण अवधि**= सीमा के भीतर, **गृणन्**=स्तुति करते हुए, **अवाच्यः**=अनिन्दनीय अथवा निर्दोष हैं तो, **स्तोत्रे**=आपकी अस्तुति में, **ममापि**=मेरा भी, **एषः**=यह, **परिकरः**=प्रयत्न, **निरपवादः**= अनिन्दनीय अथवा निर्दोष है ।

व्याख्या : इस स्तुति का आरम्भ बहुत सुन्दर ढंग से किया गया है । वैसे तो ईश्वर अनन्त नाम गुण वाला है परन्तु यहां श्रीपुष्पदन्ताचार्य जी ने

भगवान शिव को बड़े ही योग्य नाम "हर" से सम्बोधित किया है। सारे दुःख पाप और अज्ञान का हरण करने में भगवान शिव प्रसिद्ध हैं इसलिए वह हमारे पाप ताप दुःख और अज्ञान हटाने में कोई कसर नहीं छोड़ेंगे।

ईश्वर की स्तुति अपनी बुद्धि या ज्ञान के सामर्थ्य के अनुसार ही की जा सकती है और हर एक की ऐसी स्तुति निर्दोष मानी जाती है कारण यह कि ईश्वर के अनन्त नाम गुणों को वाणी अथवा मन से पूर्णतया नहीं जाना जा सकता है यहां तक कि वाणी के अध्यक्ष ब्रह्मा और अन्य देवता भी भगवान शिव की अपरम् पार महिमा को नहीं जानते। उनकी स्तुति भी उनके अयोग्य ही मानी जाती है। इसलिए साधारण जीव जो भगवान शिव की महिमा से अनभिज्ञ है उसके द्वारा की गई स्तुति तो उनके सदृश्य अथवा योग्य कभी हो ही नहीं सकती। तथापि, ऊपर के कथन के अनुसार भगवान शिव की इस स्तुति रचने का प्रयास श्री पुष्पदन्ताचार्य जी के विषय में निर्दोष ही माना जा सकता है।

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो
रतदव्यावृत्त्यायं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ।
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ।।२।।

संधिच्छेद : अतीतः पन्थानम् तव च महिमा वाक् + मनसयोः अतद्व्यावृत्त्या + यम् चकितम् + अभिधत्ते श्रुतिः + अपि स कस्य स्तोतव्यः कति + विध् + गुणः कस्य विषयः पदे तु + अर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ।

पदच्छेद : च तव महिमा वाङ्मनसयोः पन्थानम् अतीतः यम् श्रुतिः अपि अतद्व्यावृत्त्या चकितम् अभिधत्ते स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः तु अर्वाचीने पदे कस्य मनः कस्य वचः न पतति ।

अन्वयार्थ : **च** = और, **तव** = आपकी, **महिमा** = सगुण और निर्गुण महिमा, **वाङ्मनसयो** = वाणी और मन के, **पन्थानम्** = मार्ग से या पथ से या गति से, **अतीत** = परे हैं, अतिक्रमण किए हुए हैं, **यम्** = जिस महिमा को, **श्रुतिः**

अपि = वेद भी, **अतद्व्यावृत्त्या** = नेति नेति कहकर, अनात्मा के निषेध द्वारा, **चकितम्** = भय से, **अभिधत्ते** = कहते हैं, **सः** = वह महिमा, **कस्य** = किसकी, **स्तोतव्यः** = स्तुति का विषय और, **कतिविधगुणः** = कितने प्रकार के गुणों वाला, **कस्य** = किसका, **विषयः** = विषय हो सकता है. **तु** = परन्तु फिर भी, **अर्वाचीने पदे** = नवीन साक्षात् स्वरूप में, **कस्य** = किसका, **मनः** = मन और, **कस्य वचः** = किसकी वाणी, **न** = नहीं, **पतति** = प्रवृत्त होते हैं, अभिमुख होते हैं।

व्याख्या : इस श्लोक में भगवान शिव की सगुण और निर्गुण महिमा को मन और वाणी का अविषय कहा गया है। निर्गुण ईश्वर तो वाणी का विषय हो ही नहीं सकता। सगुण के अनन्त तथा विविध गुणों का वर्णन करना असंभव है। यहां तक कि वेद भी भय और विस्मय के साथ नेति-नेति अथवा अनात्मा के निषेध द्वारा ही आपको प्रतिपादित करते हैं परन्तु भक्तों पर कृपा करने हेतु धारण किए हुए

सगुण साकार स्वरूप में हर किसी भक्त का मन और वाणी प्रवृत्त होते हैं ।

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धि पर ।
अविगत अकथ अपार नेति-नेति नित निगम कह ।।
(तुलसी रामायण)

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत
स्तव ब्रह्मन किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् ।
मम त्वेतांवाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता ।।३।।

संधिच्छेद : मधुस्फीता वाचः परमम् + अमृतम् निर्मित-वतः + तव ब्रह्मन् किम् + वाक् + अपि सुर + गुरोः + विस्मय + पदम् मम तु + एताम् वाणीम् गुण + कथन + पुण्येन भवतः पुनामि + इति + अर्थे + अस्मिन् पुरमथन बुद्धिः + व्यवसिता ।।

पदच्छेद : ब्रह्मन् मधुस्फीता परमम् अमृतम् वाचः निर्मितवतः तव सुरगुरोः वाक् अपि विस्मय पदम् किम् तु पुरमथन भवतः गुणकथनपुण्येन एताम् वाणीम् पुनामि इति अस्मिन अर्थे मम बुद्धिः व्यवसिता ।।

अन्वयार्थ : **ब्रह्मन्** – हे परब्रह्मस्वरूप शिव, **मधुस्फीता** = मधु (शहद) से ओतप्रोत, माधुर्य आदि

शब्द गुण अलंकारयुक्त, अत्यन्त मधुर, **परमम्** **अमृतम्** = निरतिशय अमृतमयी, **वाचः** = वेदवाणी को, **निर्मितवतः** = निःश्वास से आविर्भूत करने वाले, **तव** = आप के लिए, **सुरगुरोः** = देवताओं के गुरू बृहस्पति जी की, **वाक् अपि** = वाणी भी, **विस्मयपदम्** = चमत्कारकारिणी या आश्चर्यकारिणी, **किम्** = क्या हो सकती है, कदापि नहीं, मेरी तो बात ही नहीं, **तु** = किन्तु, **पुरमथन** = हे त्रिपुरान्तक, **भवतः** = आपके. **गुणकथनपुण्येन** = गुणगान करने से उत्पन्न पुण्य से, **एताम्** **वाणीम्** = इस अपनी वाणी को, **पुनामि** = पवित्र करूं, **इति** = इस अभिप्राय से, **अस्मिन्** = इस, **अर्थे**= स्तुति कार्य में, **मम** = मेरी, **बुद्धिः** = बुद्धि, **व्यवसिता** = प्रवृत्त हो गई।

व्याख्या : ब्रह्मस्वरूप भगवान शिव के निःश्वास से सर्वोत्कृष्ट, अमृतमयी, अत्यन्त मधुर वेदवाणी का आविर्भाव हुआ। ऐसे शिव को तो देवताओं के गुरु बृहस्पति की वाणी क्या आश्चर्य में डाल सकती है। उत्तर है कदापि नहीं। फिर हम जैसों की गिनती कहां है।

हमारी स्तुति तो सूर्य को दीप दिखाने के बराबर है। फिर प्रश्न उठता है हम स्तुति क्यो करें। उत्तर है कि हमारी वाणी संसारिक चर्चा निन्दा से अपवित्र बनी होती है इसी अपनी वाणी को निर्मल करने हेतु, पवित्र बनाने के लिए भगवान शिव की स्तुति करने को हम उद्यत हो जाते हैं। हम भगवान को अपना स्तुति कौशल क्या दिखाए उससे उनको क्या चमत्कृत कर सकते हैं यह तो केवल अपने को ही पवित्र करने के लिए प्रयास है।

तवैश्वर्यं यत्तिज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्
त्रयीवस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु ।
अभव्यानामस्मिन् वरद रमणीयामरमणीं
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ॥४॥

संधिच्छेद : तव + ऐश्वर्यम् यत् + तत् + जगत + उदय + रक्षा + प्रलय + कृत त्रयी + वस्तु व्यस्तम् तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु अभव्यानाम् + अस्मिन् वरद रमणीयाम् + अरमणीम् विहन्तुम् व्याक्रोशीम् विदधते इह + एके जड+ धियः ।

पदच्छेद : वरद यत् तव जगदुदयरक्षाप्रलयकृत् त्रयीवस्तु तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु व्यस्तम् ऐश्वर्यम् तत् विहन्तुम् इह एके जडधियः अस्मिन् अभव्यानाम् रमणीयाम् व्याक्रोशीम् विदधते ।

अन्वयार्थ : **वरद** = हेअभीष्ट के देने वाले शिव, **यत्** = जो, **तव** = आपका, **जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्**

= जगत की उत्पत्ति, रक्षा एवं संहार करने वाला, **त्रयीवस्तु** = तीनों वेदों से प्रतिपादित, **तिसृषु** = तीन, **गुणभिन्नासु** = सत्व, रज, तम, इन तीन गुणों के कारण भिन्न-भिन्न रूप में प्रकट हुए, **तनुषु** = शरीरों में ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर के रूप में, **व्यस्तम्** = विभक्त, **ऐश्वर्यम्** = ऐश्वर्य है, **तत्** = उसको, **विहन्तुम्** = खण्डन करने के लिए, **इह** = इस संसार में, **एके** = कुछ एक, **जडधियः** = जडबुद्धि वाले, **अस्मिन्** = इस आपके ऐश्वर्य के बारे में, **अभव्यानाम्** = अज्ञानियों को जिनका कल्याण न होना हो ऐसे लोगों को, **रमणीयाम्** = अच्छा लगने वाला, **अरमणीम्** = अमनोहर, वास्तव में बुरी हानिप्रद, **व्याक्रोशीम्** = प्रलापमयी आक्षेपवचनमय वाणी को, **विदधते** = कहते रहते हैं ।

व्याख्या : इस श्लोक में जहां एक ओर भगवान शिव के असीम ऐश्वर्य का वर्णन है तो वहां दूसरी ओर कुछ एक मन्दबुद्धि वाले का खण्डन करने के असफल प्रयास को दर्शाया गया है ।

अभीष्ट वर देने वाले भगवान शिव का अपरिमित ऐश्वर्य तो देखिये। वे जगत की सृष्टि, पालन और संहार करने वाले हैं। तीनों वेदों के प्रतिपाद्य वस्तु हैं। सत्व, रज और तम इन तीनों के भेद से ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर के देहों में विभक्त हुए प्रसिद्ध हैं। परन्तु तब भी कुछ ऐसे मन्द बुद्धि वाले लोग हैं जो इस ऐश्वर्य का खण्डन करने के लिए ऐसा प्रलाप करते हैं जो सर्वथा अशोभनीय है क्योंकि वह वेद विरुद्ध है। किन्तु संसार में वह उल्टी वाणी अभव्य व्यक्तियों को, मलिनचित्त वालों को सुखद लगती है।

किमीहः किंकायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च ।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः ।।५।।

संधिच्छेद : किम्+ईहः किम्+कायः स खलु किम्+उपायः त्रिभुवनम् किम्+आधारो धाता सृजति किम्+उपादान इति च अतर्क्य+ऐश्वर्ये त्वयि+अन+अवसर+दुःस्थो हत+धियः कु+तर्को+अयम् कांश्चित्+मुखरयति मोहाय जगतः ।

पदच्छेद : खलु स धाता किमीहः किंकायः किमुपायः किमाधारः च किमुपादान त्रिभुवनं सृजति इति त्वयि अतर्क्यैश्वर्ये अनवसरदुःस्थः अयं कुतर्कः जगतः मोहाय कांश्चित् हतधियः मुखरयति ।

अन्वयार्थ : **खलु**=वास्तव में, **सः**=वह, **धाता**=परमेश्वर, **किम्**=किस, **ईहः**=प्रयोजन या इच्छा से, **किम्**=किस, **कायः**=शरीर से, **किम्**=किन, **उपायः**=साधनों से, **किम्**=किस, **आधारः**=

आधार पर, **च**=और, **किम्**=किन, **उपादान**=उपादान वस्तुओं से, **त्रिभुवनं**=तीनों लोकों को, **सृजति**=बनाता है, सृष्टि करता है, **इति**=इस प्रकार का, **त्वयि**=आप के बारे में, **अतर्क्यैश्वर्यें**=जिन का ऐश्वर्य तर्क का विषय नहीं हो सकता, **अनवसरदुःस्थाः**=अवसर न प्राप्त होने के कारण दुष्टता पर उतरा हुआ, **अयम्**=यह, **कुतर्कः**=कुतर्क, **जगतः**=जगत-वासियों को, **मोहाय**=मोह में डालने के लिए, **कांश्चित्**=कुछ एक, **हतधियः**=दुर्बुद्धि वालों को, **मुखरयति**=वाचाल बना देता है।

व्याख्या : पूर्व श्लोक में कुछ मन्दबुद्धि वालों के आक्षेप का संकेत है। इस श्लोक में कुछ विस्तृत रूप से उनके आक्षेप का वर्णन किया गया है। अपनी मन्दबुद्धि के कारण वह सर्वशक्तिमान ईश्वर की समानता लौकिक देहधारियों के साथ करते हैं और पूछते हैं कि किस प्रयोजन से, किस शरीर को धारण कर, किन साधनों से, किन उपादान सामग्री से और किस आधार पर तीन भुवनों को उसने बनाया। ऐसे मन्द-बुद्धि वाले ईश्वर के अपरिमित ऐश्वर्य और

शक्ति से अनभिज्ञ होने के कारण ही ऐसा तर्क करते हैं। वास्तव में, ईश्वर का ऐश्वर्य तर्कगम्य है और मन्दबुद्धि वाले उस ऐश्वर्य को समझने के अवसर को प्राप्त न करने के कारण उल्टी खोपड़ी के हो जाते हैं और जगत में लोगों को मोह में डालने के लिए अनर्गल होते हुए वक्ता बन जाते हैं।

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति ।
अनीशो वा कुर्याद्भुवनजनने कः परिकरं
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे ।।६।।

संधिच्छेद : अजन्मानः लोकाः किम्+अवयववन्तः+अपि जगताम् अधिष्ठातारम् किम् भव+विधिः+ अनादृत्य भवति अन्+ईशो वा कुर्यात्+भुवन +जनने कः परिकरम् यतः मन्दाः+त्वाम् प्रति अमरवर संशेरत इमे ।

पदच्छेद : अमरवर ! अवयववन्तः अपि लोकाः किम् अजन्मानः जगताम् अधिष्ठातारम् अनादृत्य किम् भवविधिः भवति वा अनीशः भुवनजनने कः परिकरम् कुर्यात् यतः मन्दाः त्वाम् प्रति इमे संशेरते ।

अन्वयार्थ : **अमरवर**=देवताओं में श्रेष्ठ हे महादेव ! **अवयववन्तः**=अवयव (अंश, भाग) सहित होते हुए, **अपि**=भी, **लोकाः**=लोक लोकान्तर,

किम्=क्या, **अजन्मानः**=जन्म रहित हो सकते हैं। **जगताम्**=जगतों की, **अधिष्ठातारम्**=कर्ता के, **अनादृत्य**=बिना, **किम**=क्या, **भव-विधिः**=उत्पत्ति आदि का सिलसिला (क्रम), **भवति**=होता है, **वा**=अथवा, **अनीशः**=ईश्वर के बिना, **भुवनजनने**=भुवनों के उत्पन्न करने में, **कः**=कौन, **परिकरं कुर्यात्**=कमर बांध सके, **यतः**=जिस आधार पर, **मन्दाः**=मन्द वुद्धि वाले, **त्वाम प्रति**=आपके संबंध में, **इमे**=ये, **संशेरते**=शंका करते हैं।

व्याख्या : देवताओं में श्रेष्ठ हे महादेव ! क्या सावयव लोक भी जन्म रहित हो सकते हैं। जहां अवयव होते हैं वहां जन्म है, संयोग है और वहाँ संहार भी है। इस प्रकार क्या चौदह विचित्र भुवनों के उत्पत्ति आदि का क्रम किसी कर्ता के बिना हो सकता है। कदापि नहीं। क्या ईश्वर के बिना कोई और इन अनेक भुवनों का निर्माण कर सकता है। यदि हां, तो किस सामग्री और साधनों से कर सकता है। अनीश्वर को तो अपनी शरीर रचना का भी

ज्ञान नहीं तो वह भुवन क्या बनाए। इन सब से सिद्ध होता है कि ईश्वर ही भुवनों का निर्माण करने वाले हैं। इस बात के इतना स्पष्ट होते हुए भी मन्दबुद्धि वाले नास्तिकों को संदेह होता ही रहता है।

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ।।७।।

संधिच्छेद : त्रयी सांख्यम् योगः पशुपति+मतम् वैष्णवम्+इति प्रभिन्ने प्रस्थाने परम्+इदम्+अदः पथ्यम्+इति च रुचीनाम् वैचित्र्यात्+ऋजु+कुटिल+नाना+पथ+जुषाम् नृणाम्+एकः गम्यः+त्वम्+असि पयसाम्+अर्णव इव ।

पदच्छेद : त्रयी सांख्यम् योगः पशुपतिमतम् वैष्णवम् इति प्रभिन्ने प्रस्थाने इदम् परम्, अदः पथ्यम् इति च रुचीनाम् वैचित्र्यात् ऋजुकुटिलनानापथ-जुषाम् नृणाम् पयसाम् अर्णव इव एकः त्वम् गम्यः असि ।

अन्वयार्थ : **त्रयी**=तीन वेद, **सांख्यम्**=भगवान कपिल द्वारा उपदिष्ट सांख्य, **योगः**=भगवान पतंजलि-कृत योगदर्शन, **पशुपतिमतम्**=पशुपतमत,

वैष्णवम्=वैष्णव मत, **इति**=यह सारे, **प्रभिन्ने**=भिन्न भिन्न, **प्रस्थाने**=मार्ग, शास्त्ररूपी परमार्थ लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मतमतान्तर, **इदम्**=यह, **परम**=श्रेष्ठ है, हितकर है, **अदः**=वह मार्ग, **पथ्यम्**=हितकर है, **इति च** =इस प्रकार, **रुचीनाम्**=रुचि, प्रवृत्ति, इच्छा की, **वैचित्र्यात्**=विचित्रता होने से, **ऋजुकुटिलनानापथजुषाम्**=सीधे और टेढ़े अनेक मार्गों को अपनाने वाले, **नृणाभ्**=मनुष्यों का, **पयसाम्**=जल-गंगा, यमुना आदि नदी नालों का जैसे, **अर्णव इव**=सागर ही (गन्तव्य है), **एकः त्वम्**=उसी प्रकार एक आप ही, **गम्यः असि**=प्राप्य हो, गति हो ।

व्याख्या : इस श्लोक में "त्रयी" से ऋक्, साम् और यजुः नाम के वेद लिए गए हैं । चौथे अथर्ववेद का विषय धर्म और मोक्ष न होकर अर्थ और काम ही है अतः उसे यहां लिया नहीं गया ।

वेदों के छः अंग हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष । फिर चार उपांग हैं—पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र । इस में वैशेषिक शास्त्र का न्याय,

वेदान्तशास्त्र का मीमांसा, धर्मशास्त्र में सांख्य, योग, मतमतान्तर, महाभारत, रामायण और पुराणों में उपपुराण भी सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त चार उपवेद हैं—आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्र।

वेद, उपवेद, वेदांग—उपांग कुल जोड़कर अठारह विद्याएं बनती हैं जो "त्रयी" शब्द में आते हैं इसी प्रकार उदाहरणतया ही विभिन्न मतमतान्तरों में सांख्य, योग, पाशुपत (शैव) शास्त्र, वैष्णवमत (जो नारद मुनीश्वर के पञ्चरात्र आदि पर आधारित है) का ही उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त भी मतमतान्तर हैं जो ग्राह्य हैं। इन मतमतान्तरों के उपादान से ही प्रस्थान भेद की उत्पत्ति होती है और कहा जाता हैं कि यह मत अच्छा है, श्रेष्ठ है, हितकारी है अथवा वह मत श्रेष्ठ है इत्यादि। फलतः कोई कर्मकाण्डी बनना चाहता है तो कोई ज्ञानकाण्डी। सांख्ययोग, शाक्त, वैष्णवमत इत्यादि में पथापथ्य रूपी विवाद स्पष्ट है। अलग-अलग वातावरण और समाज में पलने के कारण अपनी-अपनी रुचि बनती है उनकी विचित्रता व्यक्तिगत होती है। इसलिए सीधे, टेढ़े, अनेक मार्गों से चलते हैं। परन्तु इन सब के लिए एक हो गंतव्य स्थान अथवा गति शिवप्राप्ति ही है जैसे कि गंगा, यमुना आदि नदियां नाले या तो सीधा नहीं तो टेढ़े-मेढ़े रास्तों से

होकर अन्त में सागर में ही समा जाते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में भी भववान् कहते हैं :

"येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौंतेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥"

भेदबुद्धि और मताग्रह का त्याग करना है। सद्‌गुरु के दर्शाये मार्ग पर चलने से निष्काम कर्म करता हुआ भक्त श्रवण, मनन, ध्यान, निदिध्यासन द्वारा परमशान्तप्रकाशरूप परमानन्द परमशिव को प्राप्त होता है। टेढे-मेढे रास्ते छोड़कर सीधा रास्ता पकड़कर भक्त उसी प्रकार सीधे परमानन्दस्वरूप परमशिव को प्राप्त करेगा जैसे गंगा सीधे सागर को प्राप्त होती है। तात्पर्य यही है कि जैसे समस्त नदी नालों के मार्गों से बहता हुआ जल अन्ततोगत्वा समुद्र में ही मिल जाता है वैसे ही प्रत्येक धार्मिक मार्ग से चलता हुआ साधक अन्ततोगत्वा परमेश्वर के पास ही पहुंचता है।

महोक्षः खट्वांगं परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालं चेतीयत्तव वरद तंत्रोपकरणम् ।
सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रू प्रणिहितां
न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ।।८।।

संधिच्छेद : महोक्षः खट्+अंगम् परशुः+अजिनम् भस्म फणिनः कपालम् च+इति+इयत्+तव वरद तन्त्र+उपकरणम् सुराः+ताम् ताम्+ऋद्धिम् दधति तु भवत्+भ्रू+प्रणिहिताम् न हि स्व+आत्मा+आरामम् विषय+मृगतृष्णा भ्रमयति ।

पदच्छेद : वरद ! महोक्षः खट्वांगम् परशुः अजिनम् भस्म फणिनः कपालम् च इति ईयत् तव तन्त्रोपकरणम् सुराः तु भवत् भ्रू प्रणिहिताम् ताम्-ताम् ऋद्धिम् दधति हि स्वात्मारामम् विषय मृगतृष्णा न भ्रमयति ।

अन्वयार्थ : **वरद**=वर वेने वाले हे शिव ! **महोक्षः**=बूढ़ा बैल (वृषभ), **खट्वांगम्**=खाट का पाया, **परशुः**=फरसा, कुल्हाड़ी, **अजिनम्**=मृगचम्

भस्म्=भस्म, **फणिनः**=सर्प, **कपालम् च**=और खोपड़ी, खप्पर, **इति इयत्**=बस इतना ही, **तव**=आपका, **तन्त्रोपकरणम**=प्रमुख सामग्री अथवा जीवन निर्वाह करने का सामान, **सुराः तु**=परन्तु देवता लोग, **भवतः**=आपके, **भ्रू प्रणिहिताम्**=भौंहों के इशारे से निश्चिन्त होते हुए, **ताम् ताम्**=उस उस उत्कृष्ट, **ऋद्धिम्**=ऋद्धि, वैभव, दिव्य ऐश्वर्य को, **दधति**=धारण करते हैं, प्राप्त करते हैं, **स्वात्मारामम्**=अपनी आत्मा में सदा रमण करने वाले को, **विषयमृगतृष्णा**=मृगतृष्णा सदृष्य भोग, **न हि**=वास्तव में कभी नहीं, **भ्रमयति**=भ्रम में डाल सकते हैं अथवा मोहित कर सकते हैं ।

व्याख्या : देवताओं के शिरोमणि महादेव जी को तो देखिए कि एक कुटुम्बी होकर भी उनकी चल और अचल सम्पत्ति क्या है । उनकी अर्धांगिनी देवी पार्वती जी, और दो पुत्र कार्त्तिकेय जी और गणेश जी हैं । कुटुम्ब भरण के लिए देखिए सामग्री क्या रखी है । घूमने-फिरने के लिए

जहां दूसरों के पास जहाज और पुष्पक विमान हैं तो आप के पास सवारी के लिए केवल एक बैल है और वह भी बूढ़ा। शयन के लिए तो पलंग होते हैं और महादेव जी के पास शायद टूटी खाट है जिसका पाया टूटा हुआ है और उसमें लगाने के लिए एक पाया है अथवा शत्रुओं को हटाने के लिए यह आयुध है। शत्रुओं को डराने भगाने के लिए अथवा भोजन बनाते समय लकड़ी फाड़ने के लिए एक फरसा रखा है। कोई स्टोव नहीं, कोई गेस नहीं। वस्त्र के स्थान पर मृगचर्म है कहां गए रेशम, टेरीवूल और बढ़िया मूल्यवान पोशाक। वैसे मृगचर्म है बड़ा उपयोगी यह पहनने के ओढ़ने के काम आवे, धोने की आवश्यकता नहीं, बिस्तरे के स्थान पर काम आवे, बारिश से बचावे। टैलकम पाउडर के स्थान पर भस्म है जिससे वह अपना श्रृंगार करते हैं, तिलक लगाते हैं, बदन पर मलते हैं। अब आभूषण देखिए। लम्बे-लम्बे सर्प, सुगन्धित पुष्पों की माला तो सूख जाती है कौन झंझट उठाए, रोज की। सर्प से रस्सी का काम भी ले सकते हैं, कहीं कुएं से पानी निकालना हो अथवा कमरबन्द के स्थान

पर भी काम आवे। राजा महाराजा तो मुकुट पहनते हैं परन्तु महादेव जी के पास खप्पर है। बड़े काम की वस्तु है पानी पीने के लिए, सिर को ढक कर धूप बारिश से बचाने के लिए। मुकुट तो चोरी हो सकता है परन्तु खप्पर को चोरी होने का भी भय नहीं। अब देखा जाए तो यह उपकरण दरिद्रता के लक्षण हैं। नहीं। यही उस महादेव के निस्पृहता और वैराग्य के लक्षण हैं। उनके भौहों के इशारे मात्र से अथवा कृपाकटाक्ष से इन्द्रादि देवता अलौकिक उत्कृष्ट, दिव्य सिद्धियों को धारण करते हैं। अपने लिए धन वैभव संग्रह क्यों करें। ये सभी विषय मृगतृष्णा की तरह हैं। दुःखमय रूप होते हुए सुखरूप का आभास देते हैं। रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श विषयभोग जल के बुदबुदे की तरह क्षणिक हैं और सुख का भास कराते हुए अन्त में दुःखी करते हैं। जो जिज्ञासु तत्त्व-निष्ठ होते हैं उनको विषयभोग क्या मोहित कर सकते हैं, कदापि नहीं। फिर तो स्वयं महादेव जी, जो परमानन्द में सदा रमण करने वाले हैं उनको ऋद्धियों, सिद्धियों, ऐश्वर्य

और वैभव से क्या काम। उनके लिए तो यह अतीव तुच्छ और क्षुद्र वस्तुएं हैं। कहां स्वात्मानन्दरत और कहां विषयभोगलोलुप।

इस श्लोक से हम सब को विशेषकर कुटुम्बधारियों को यह सीख मिलती है कि कुटुम्बभरण के लिए न्यूनतम आवश्यकताएं संग्रह करके निःस्पृहभाव और वैराग्य भाव से तपस्या साधना करते-करते स्वात्मारमणीय बनना चाहिए।

इस श्लोक की पहली दो पंक्तियों का सुप्रसिद्ध व्याख्याकार सकलागमविशारद श्री मधुसूदन सरस्वती जी ने आगमप्रतिद्ध अर्थ के रूप में यों व्याख्या की है :

"पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा, इन्द्रिय और पंचमहाभूत क्रमशः महोक्षः, खटवांग, परशु, अजिन, भस्म, फणि और कपाल बनकर गुप्त रूप से भगवान शिव की उपासना अथवा सेवा में सदा रत रहते हैं"।

ध्रुवं कश्चित् सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये।
समस्तेऽप्येतस्मिन्पुरमथन तैर्विस्मित इव
स्तुवन्जिह्रेमि त्वां न खलु ननु-धृष्टा मुखरता
॥८॥

संधिच्छेद : ध्रुवम् कश्चित सर्वम् सकलम्+अपरः+तु+अध्रुवम्+इदम् परः ध्रौव्यः+अध्रौव्ये जगति गदति व्यस्त+विषये समस्ते+अपि+एतस्मिन्+पुरमथन् तैः+विस्मित इव स्तुवन् जिह्रेमि त्वाम् न खलु ननु धृष्टा मुखरता।

पदच्छेद : पुरमथन कश्चित् इदम् सर्वम् ध्रुवम् गदति तु अपरः सकलम् अध्रुवम् (गदति) परः समस्ते अपि एतस्मिन् जगति ध्रौव्य—अध्रौव्ये व्यस्त—विषये (गदति) विस्मित इव तैः त्वाम् स्तुवन न खलु जिह्रेमि मुखरता।

अन्वयार्थ : **पुरमथन**=हे त्रिपुरारि। **कश्चित्**=कोई मतवाला, **इदम्**=इस, **सर्वम्**=सम्पूर्ण प्रपंच को,

ध्रुवम्=स्थिर, आदि अन्तरहित, **गदति**=कहता है, **तु**=परन्तु, **अपरः**=कुछ अन्य, **सकलम्**= सारे जगत को, **अध्रुवम्**=अनित्य, असत्य, अस्थिर, (**गदति**)=कहता है, **परः**=इन से भी अन्य, **समस्ते अपि**=सारे ही, **एतस्मिन्**=इस, **जगति**=जगत में, **ध्रौव्य-अध्रौव्ये**=नित्यता और अनित्यता दोनों ही को, **व्यस्तविषये**=विभिन्न वस्तुओं में, (**गदति**)=कहते हैं, **विस्मित इव** =आश्चर्यचकित सा हुआ, **तैः**=इन सब वादों के द्वारा, **त्वाम्**=आपकी, **स्तुवन**=स्तुति करता हुआ, **न**=नहीं, **जिह्रेमि**=लज्जाता हूं, **खलु**= वास्तव में, **मुखरता**=वाचालता, **ननु**=असंशय ही, **धृष्टा**=ढीठ होती है।

व्याख्या : सातवें श्लोक में कुछ मतमतान्तरों का उल्लेख किया गया है। भिन्न-भित्न मतों की इस जगत के बारे में अपनी-अपनी धारणाएं हैं। वे परस्पर विरुद्ध हैं। उदाहरणतया सांख्य वाले कहते हैं कि जगत नित्य है सत्य है। मीमांसक भी कहते हैं कि यह जगत ध्रुव है सत्य है। बौद्धों के अनुसार सारा जगत असत्य है और

यह असत्यारूपी अध्रुवता है। वैशेषिकादि इस को ध्रुवाध्रुव कहते हैं। उनके अनुसार कुछ ध्रुव है और कुछ अध्रुव। जाग्रतावस्था में सत्य और स्वप्नावस्था में असत्य। संसार का व्यवहार तो सत्य और असत्य के मिश्रण पर ही आधारित है। समस्त विषय में ध्रौव्याध्रौव्य अपने-अपने स्थान में ठीक हैं। जिसकी जहाँ तक बुद्धि पहुंची उसने वैसी ही इस प्रपंच की व्याख्या की। इन मत-मतान्तरों की परस्पर विरुद्ध धारणाओं के कारण भक्त असमंजस में पड़ जाता है कि ठीक क्या है ओर क्या ठीक नहीं। सत्य तो यह है कि कोई भी पूर्णरूपेण इस जगत को समझ न सका और समझा भी न सका।

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनम्

आश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः

आश्चर्यवच्चैनमन्यः श्रणोति

श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्। गीता २-२९

ईश्वर की माया बड़ी बलवती है यह ज्ञानियों के चित्त को भी बलात्कार पूर्वक खींचकर मोह में डाल देती है। (ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा, बलाताकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति)। कौन बच सकता है इस बलवती माया से। इसलिए यह विडम्बना जो मतमतान्तरों के परस्पर विरुद्ध धारणाओं से उत्पन्न हुई है वह तो रहेगी ही। भक्त भगवान से कहता है कि हे त्रिपुरारि मैं इन परस्पर विरुद्ध मतमतान्तरों की परवा नहीं करता मैं वाचाल हूं और आपकी स्तुति करने में लज्जाता नहीं हूं क्योंकि वाचालता ने मुझे ढीठ वना दिया है इसलिए मुझे क्षमा करना।

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरंचिर्हरिरधः
परिच्छेतुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः ।
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति
॥१०॥

संधिच्छेद : तव + ऐश्वर्यम् यत्नात् + यत् + उपरि विरंचिः + हरिः + अधः परिच्छेतुम् यातौ + अनलम् + अनल् + स्कन्ध + वपुषः ततः भक्ति + श्रद्धा + गुरु + गृणदभ्याम् गिरिश यत् स्वयम् तस्थे ताभ्याम् तव किम् + अनुवृत्तिः + न फलति ।

पदच्छेद : गिरिश अनलस्कन्धवपुशः तव अनलं ऐश्वर्यम् यत् परिच्छेतुम् यत्नात् विरंचिः उपरि हरिः अधः यातौ (अनलं) ततः भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृण-दभ्याम् यत् ताभ्याम् स्वयम् तस्थे तव अनुवृत्ति किम् न फलति ।

अन्वयार्थ : **गिरिश**=पहाड़ अर्थात् कैलाश के स्वामी हे शिव ! **अनलस्कन्दवपुषः**=तेजः पुंजमूर्ति का

आकार धारण करने वाले, **तव**=आपके, **अनलम्**=अग्नि के रूप में प्रकट हुए, **ऐश्वर्यम्**=ऐश्वर्य को, **यत्**=जो, **परिच्छेतुम्**=मापने के लिए, **यत्नात्**=यत्न करते हुए, **विरंचिः**=ब्रह्मा जी, **उपरि**=ऊपर की ओर, **हरिः**=विष्णु जी, **अधः**=नीचे की ओर, **यातौ**=चले गए, **अनलम्**=किन्तु मापने में असमर्थ हुए, **ततः**=फिर, **भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्याम्**=भक्ति श्रद्धा युक्त बहुत सी स्तुति करते हुए, **यत्**=यों. **ताभ्याम्**=उन दोनों ने, **स्वयम्**=स्वयम् ही, **तस्थे**=अनुसरण यत्न छोड़ दिया, **तव**=आपकी, **अनुवृत्ति**=सेवा, **किम्**=क्या, **न**=नहीं, **फलति**=फल देती है ।

व्याख्या : हे कैलाशवासी शिव ! आप का ऐश्वर्य अनन्त और असीमित है। जब आप एक अनन्त अग्निमय ज्योतिर्लिंग के रूप में प्रकट हो गये तो उसके मापने के लिए, एक वार ब्रह्मा और विष्णु ने यत्न किया । इस के साथ एक कथा जुड़ी हुई है, जो संक्षेप में ऐसे हैं :—

एक बार ब्रह्मा और विष्णु में वाद-विवाद हुआ कि उन दोनों में कौन बड़ा है । वाद-विवाद ने उग्र रूप धारण

किया । ब्रह्मा जी ने अपना ब्रह्मास्त्र छोड़ा और विष्णु ने सुदर्शन चक्र । दोनों अस्त्र आपस में टकरा गए । परिणाम-स्वरूप अग्नि की एक विशाल ज्वाला प्रकट हुई जो सारे विश्व को जलाने लगी । हाहाकार मचा । देवता असुर आदि भयभीत होकर भगवान शंकर की शरण में गए ।

भगवान शिव प्रसन्न हो गए । देखते-देखते ब्रह्मा और विष्णु के मध्य में एक अन्तरहित ज्योतिः पुंज खड़ा हो गया जिसमें ब्रह्मास्त्र और चक्र समा गए । दोनों में फैसला हुआ जो इस ज्योतिः पुंज का पार पाएगा वही हम दो में बड़ा होगा । इस उद्देश्य से ब्रह्मा ऊपर की ओर और विष्णु नीचे की ओर चल दिए । बहुत देर तक दोनों उसका पार न पा सके । विष्णु अपनी हार मानने को तैयार हो गए परन्तु ब्रह्मा ने ऊपर से आते एक कामधेनु और चम्पक फूल को आते देखा । डरा-धमकाकर ब्रह्मा ने उन्हें झूठी साक्षी देने को कहा कि ब्रह्मा ने उस ज्योतिर्लिंग का पार पाया । विष्णु के पूछने पर दोनों ने झूठी गवाही दी । विष्णु ब्रह्मा को प्रणाम करने को उद्यत हुए । परन्तु यह झूठी स्थिति भगवान शंकर ने जब देखी तो वह रुद्ररूप में प्रकट हो गए और झूठ बोलने वाले ब्रह्मा के पांचवे सिर को नाखून से काट गिराया । कामधेनु और चम्पा को शाप दिया । इसके पश्चात् ब्रह्मा और विष्णु ने भगवान शिव की भक्ति और

श्रद्धा से बहुत स्तुति की। इस पर भगवान शंकर उनके सामने प्रकट हो गए और उन पर अनुग्रह करके उनको कृतार्थ किया।

इस श्लोक में श्री पुष्पदन्ताचार्य जी ने बड़े सुन्दर ढंग से स्तुति की महत्ता का वर्णन किया है। जब तक ब्रह्मा और विष्णु गर्वान्वित होकर शिव का पार पाने के लिए चले थे तब तक वह असफल ही रहे। जब वह हार गए और अहंकार को छोड़ कर भक्ति (कायिकी सेवा), श्रद्धा (आस्तिक बुद्धि वाली मानसी सेवा) और लम्बे समय तक श्रेष्ठ स्तुति (वाचिकी सेवा) करने लगे तब ही भगवान् शंकर ने स्वयं ही, न कि ब्रह्मा-विष्णु के प्रयत्न से, अपने-आपको उनके सामने प्रकट किया और उन्हें अनुगृहीत किया।

स्तुति करनी हो तो श्रद्धा और भक्ति युक्त होनी चाहिए। समय पर भगवान् शंकर स्वयमेव अपनी कृपा हम पर करेंगे।

अयत्नादासाद्य त्रिभुवनमवैरि व्यतिकरं
दशास्यो यद् बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान् ।
शिरः पद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम्
॥११॥

संधिच्छेद : अयत्नात्+आसाद्य त्रिभुवनम्+अवैरि व्यतिकरम् दशास्यः यत्+बाहून्+अभृत रणकण्डू +परवशान् शिरः+पद्म+श्रेणी+रचित+चरण +अम्भोरुह+बलेः स्थिरायाः+त्वद्+भक्तेः+ त्रिपुरहर विस्फूर्जितम+इदम् ।

पदच्छेद : त्रिपुरहर दशास्यः यत् अयत्नात् त्रिभुवनम् अवैरि व्यतिकरम् आसाद्य रणकण्डूपरवशान् बाहून् अभृत इदम् शिरः पद्मश्रेणीरचित-चरणाम्भोरुहबलेः स्थिरायाः त्वद्भक्तेः विस्फूर्जितम् ।

अन्वयार्थ : त्रिपुरहर=हे त्रिपुरारि, दशास्यः=रावण, यत्=जो, अयत्नात्=बिना यत्न के, त्रिभुवनम्

=तीनों लोकों को, **अवैरिव्यतिकरम्**=शत्रुओं के सम्पर्क से हीन और वैरकारण रहित, **आसाद्य**=प्राप्त करके, **रणकण्डूपरवशान्**=युद्ध करने की खुजलाहट के वशीभूत, **बाहूनअभृत**=भुजाओं (बीस) को धारण किए हुए था, **इदम्**=यह सब, **शिरः पद्मश्रेणीरचित**=अपने सिर रूपी कमलों की पंक्ति के द्वारा की गई, (तव) **चरणाम्भोरुहबलेः**=आपके चरणकमलों में भेंट अथवा उपहार के रूप में अर्पित की हुई, **स्थिरायाः**=सुदृढ़, **त्वद्भक्तेः**=आप के प्रति भक्ति का, **विस्फूर्जितम्**=प्रभाव था ।

व्याख्या : पूर्व श्लोक में भक्तिश्रद्धायुक्त गूढ स्तुति करने का यह महात्म्य दिखाया कि ब्रह्मा और विष्णु के सामने भगवान शिव स्वयम् प्रकट हुए और उनको अनुगृहीत किया। इस श्लोक में राक्षसराज रावण पर भगवान शिव का अनुग्रह दर्शाया गया है। एक ओर तो ब्रह्मा, विष्णु जैसे महान और सात्विक वृत्ति के और दूसरी ओर से रावण जैसे राक्षस तामसिक वृत्ति वाले पर भी भगवान शिव की महती कृपा केवल भक्ति द्वारा ही हुआ करती है ।

रावण के द्वारा भगवान शिव को सिर भेंट चढ़ाने के बारे में ऐसी कथा आती है :

रावण पूर्वजन्म में शिवगण था। उसने एक बार श्री नारद जी का उपहास किया था जब श्री नारायण ने नारद का कामदेव पर विजय पाने के झुठे गर्व को तोड़ने के लिए उसको एक स्वयंवर में वानरमुखी कर दिया था। श्री नारद जी ने शाप दिया और वह अगले जन्म में राक्षस बना।

रावण को उसकी माता ने शंकर कृपा प्राप्त करने को प्रेरित किया क्योंकि उसके सौतेले भाई कुबरे के पास शंकर कृपा से ही नवनिधि प्राप्त हो चुके थे और पुष्पक विमान भी था।

रावण ने घोर तपस्या की, यज्ञ किए, स्तवन किया परन्तु शंकर साक्षात्कार न हुआ। ऐसे निराश होकर उसने अपने जीवन को अन्त करने की ठानी। तलवार उठाई और एक सिर काट कर श्री शंकर के चरण कमलों में भेंट चढ़ाने की भावना से यज्ञकुण्ड में उसका होम किया। ऐसा करते-करते नौ सिर भेंट चढ़ाए। दसवां सिर काटने को जो हाथ उठाया तो भगवान शंकर प्रकट हुए और वर मांगने पर उसे अभीष्ट वर प्रदाने किए। अपरिमित शक्ति

प्रदान की। उसने देवताओं से न मारे जाने सकने का वर मांगा क्योंकि मनुष्यों से उसको कोई डर नहीं था।

रावण ने ऐसी शंकर कृपा प्राप्त कर त्रिलोकी में सारे वीरों को और इन्द्रादि देवताओं को अपना दास बना लिया। रावण के लिए अब तीनों लोकों में कोई युद्ध करने वाला न रहा। पराक्रम सुनकर सारे वीर अपना गर्व त्याग बैठे। अनायास ही त्रिभुवन को जीत कर शत्रुहीन करके रावण की बीस शक्तिशाली भुजाएं युद्ध के लिए सदा खुजलाती थीं। इतना शौर्य रावण के पास भगवद्भक्ति का ही प्रभाव था।

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनं
बलात् कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः ।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलितांगुष्ठशिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः
॥१२॥

संधिच्छेद : अमुष्य त्वत्+सेवा+सम्+अधिगत+सारम् भुज+वनम् बलात् कैलासे+अपि त्वद्+अधिवसतौ विक्रमयतः अलभ्या पाताले+अपि+अलस+चलित+अंगुष्ठ+शिरसि प्रतिष्ठा त्वयि+आसीत् ध्रुवम्+उपचितो मुह्यति खलः ।

पदच्छेद : त्वत्सेवा समधिगतसारं भुजवनं त्वदधिवस्तौ कैलासेऽपि बलात् विक्रमयतः अमुष्य त्वयि अलस् चलित-अंगुष्ठ शिरसि पातालेऽपि प्रतिष्ठा अलभ्या आसीत् ध्रुवं उपचितः खलः मुह्यति ।

अन्वयार्थ : **त्वत्सेवा**=आपकी सेवा (भक्ति) से, **सम**+ **अधिगत**+**सारं**=अतुलित पराक्रम को प्राप्त हुए, **भुजवनं**=बाहुओं के जंगल (बीस हाथों) को, **त्वद्धिवसतौ**=आपके निवासस्थान, **कैलासेऽपि**=कैलास पर्वत पर भी, **बलात्-विक्रमयत:**=बलपूर्वक लगाते हुए, **अमुष्य**= उस रावण की, **त्वयि**=आपके, **अलस्**=आलस्य से, **चलित**=चलाए हुए, **अंगुष्ठ शिरसि**= अंगूठे के अग्रभाग से, **पातालेऽपि**=पाताल में भी, **प्रतिष्ठा**=स्थिति, **अलभ्या**=प्राप्त न हुई अथवा दुर्लभ हुई, **आसीत्**=थी, **उपचित:**= प्रतिष्ठा को प्राप्त हुआ, **खल:**=दुष्ट, **मुह्यति** =मोह में पड़ जाता है अथवा विवेकहीन हो जाता है।

व्याख्या : पुराणों में यह कथा प्रसिद्ध है कि भगवत् कृपा से अतुलित बल को प्राप्त हुए रावण ने अपने बल की परीक्षा लेने के लिए भगवान के निवासस्थान कैलास पर्वत को ही उखाड़ना शुरू किया। भगवती पार्वती सहम गई और भगवान शिव से प्रार्थना की। भगवान शिव ने कैलास को स्थिर रखने के लिए अपने अंगूठे

के अग्र भाग को अलसाते हुए थोड़ा सा हिलाया। अर्थात् अंगूठे की नोंक से कैलास को ज़रा नीचे दबाया। रावण का बल क्षीण हुआ और नीचे पाताल में पहुंच गया और वहां से भी नीचे-नीचे दबता ही गया। फिर भी भगवान ने उस पर कृपा की और वहाँ से निकाला।

इस संदर्भ में यह भी कहा जाता है कि रावण प्रतिदिन प्रातः काल में ही शिवपूजार्थ कैलास जाया करते थे। इस रोज़-रोज़ के झंझट से छुटकारा पाने के लिए उसने सोचा कि क्यों न कैलास को ही लंका ले जाऊं और वहां ही शिव पूजा किया करूं। इस उद्देश्य से ही उसने कैलास को उखाड़ना चाहा।

पाताल से निकलने का उपाय नारदजी ने रावण को बतलाया। रावण ने शिवताण्डवस्तुति की। उससे भगवान् शिव प्रसन्न हुए और रावण को पाताल से मुक्त कर दिया।

ब्रह्मा और विष्णु पर भी शिव कृपा हुई परन्तु उन्होंने रावण जैसा कोई ऐसा दुस्साहस नहीं किया। रावण राक्षस था, तामसवृत्ति का था इसलिए मोह में पड़कर कैलास

पर्वत को उखाड़ना चाहा। जिस शिव से उसे वर प्राप्त हुए थे उसी की अवगणना करने का दुस्साहस किया। वास्तव में, दुष्ट जब ऐश्वर्ययुक्त हो जाता है तो विवेक खो बैठता है और दुष्कार्य करता है जिसका उसको अवश्य दण्ड मिलता है।

यह परम आवश्यक है कि तामस वृत्ति का त्याग किया जाए तब ही भक्ति श्रेयस्कर होगी।

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सती-
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेय त्रिभुवनः
न तच्चित्रं तस्मिन्वरिवसितरि त्वच्चरणयो-
र्न कस्या-उन्नत्यै भवति-शिरसस्त्वय्यवनतिः
॥१३॥

संधिच्छेद : यत्+ऋद्धिम् सुत्राम्णः वरद परम+उच्चैः+अपि सतीम्+अधः+चक्रे बाणः परिजन+विधेय+त्रिभुवनः न तत्+चित्रम् तस्मिन्+वरिवसितरि त्वत्+चरणयोः न कस्या+उन्नत्यै भवति शिरसः+त्वयि+अवनतिः ।

पदच्छेद : वरद परिजन विधेय त्रिभुवनः बाणः सुत्राम्णः परम् उच्चैः सतीम् अपि ऋद्धि यत् अधश्चक्रे तत् त्वच्चरणयोः वरिवसितरि तस्मिन् न चित्रम् त्वयि शिरसः अवनतिः कस्यै उन्नत्यै न भवति ।

अन्वयार्थ : **वरद**=वर देने वाले महादेव ! **परिजन**=दासों की तरह, **विधेय**=वश में किए अथवा उन पर आधिपत्य पाया, **त्रिभुवनः**=तीनों लोकों

पर जिसने उस, **बाणः**=बलिपुत्र बाणासुर ने, **सुत्राम्णः**=इन्द्रदेवता की, **परम उच्चैः**= अत्यन्त उन्नत, **सतीम अपि**=होती हुई भी, **ऋद्धि**=सम्पत्ति को, **अधश्चक्रे**=नीचे कर दिया, **तत्**=वह, **त्वचरणयोः**=आपके चरणों की शरण में, **वरिवसितरि**=सदा ठहरने वाले, **तस्मिन्**=उस बाणासुर के लिए, **न चित्रम्**= कोई आश्चर्यमय बात न थी, **त्वयि**=आपके सामने, **शिरसः**=मस्तक को, **अवनतिः**=अवनत करना, झुकाना, **कस्यै**=किस, **उन्नत्यै**=उन्नति के लिए, **न भवति**=नहीं होता, अर्थात् उससे सब प्रकार की उन्नति प्राप्त होती है।

व्याख्या : रावण की तरह बाणासुर पर भी भगवान् शंकर प्रसन्न हुए और उसने तीनों भुवनों को दासवत् अपने आधिपत्य में करके इतनी उन्नत समृद्धि को प्राप्त किया जिसकी अपेक्षा देवराज इन्द्र की सम्पत्ति भी तुच्छ थी। भगवान शिव के चरणकमलों में विनम्र सेवाभाव से अधीन हुए उस बाणासुर के लिए वह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। क्योंकि भगवान शिव के चरणकमलों में अपने मस्तक को अवनत करने

पर कौनसी उन्नति प्राप्त नहीं होती अर्थात् मोक्षपर्यन्त सब प्रकार की उन्नति प्राप्त होती है ।

इस श्लोक की विस्तृत व्याख्या पुराणकथाओं सहित बहुत ही सुचारु ढंग से महामण्डलेश्वर पूज्य स्वामी श्री काशिकानन्द जी महाराज ने श्री शिवमहिम्नस्तोत्र के स्पन्दवार्त्तिक व्याख्या में की है । उसके कुछ अंश संक्षिप्त रूप में मैं उन्हें पाठकों के लाभार्थ यथावत् उद्धृत करता हूं ।

"बाणासुर जबलपुर में पवित्र नर्मदा तट पर पार्थिवेश्वर बनाकर शंकर की पूजा करता था । बाणासुर नर्मदाजी से मृत्तिका लेकर पार्थिवेश्वर बनाता था । षोडश उपचार से नित्य पूजा करता था ।

श्रावण मास में वलिपुत्र बाण सवा लाख शिवलिंग नित्य बनाकर पूजता था । बाण द्वारा विसर्जित शिवलिंगों को नर्मदा माता आत्मसात् कर लेती थी । अतः बाणलिंग आज भी पवित्र माने जाते हैं ।

बाणलिंग सप्रतिष्ठ तथा अप्रतिष्ठ हैं। अर्थात् बिना प्रतिष्ठा किए पूजे जा सकते हैं, प्रतिष्ठा करके भी उनकी पूजा की जा सकती है। बाणासुर-प्रतिष्ठापित होने से सप्रतिष्ठ है। रेवाजल में विसृष्ट होने से अप्रतिष्ठ भी हैं। बाणलिंग के भोग में ग्राह्य अग्राह्य विचार नहीं है। सभी उसे ग्रहण करें। और न करें तो शिव नैवेद्यापराध से करोड़ों वर्ष नर्क में पड़ेंगे। शिवदीक्षा प्राप्त सभी व्यक्ति शिवलिंगों के प्रसाद ग्रहण करें। दूसरे लोग नर्मदेश्वर और ज्योतिर्लिंग का भोग ग्रहण करें।

पूजा से प्रसन्न भगवान शंकर ने बाणासुर की इच्छा के अनुसार इन्द्रादि से भी अजेय दो हजार भुजाएं और अपार समृद्धि प्रदान की।

मूढ होकर बाणासुर ने युद्धार्थ शंकर का आवाह्न किया। किंतु उसका उल्लेख पुष्पदन्ताचार्य ने प्रकट रूप से नहीं किया। क्यों ? रावण के समान बाणासुर का सर्वथा नाश नहीं हुआ। रावण के समान परदाराभिलाषादि बाणासुर को कभी नहीं हुई। अतएव महामुनि कात्यायन ने यहां बाण की उन्नति

मात्र को दिखाया और अर्थान्तरन्यास से भी उन्नति मात्र का समर्थन किया। और पूर्वोक्त उन्नति तो क्या चीज़ है ? मोक्षपर्यन्त सभी उन्नति उमापति भगवान शंकर की उपासना प्रदान करती है।"

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा-
विधेयस्यासीद्यस्त्रियन विषं संहृतवतः ।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभंग व्यसनिनः
॥१४॥

संधिच्छेद : अकाण्ड + ब्रह्माण्ड + क्षय + चकित + देव + असुर + कृपा + विधेयवस्य + आसीत् + यः + त्रि + नयन विषम् संहृतवतः सः कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियम् + अहो विकारः + अपि श्लाघ्यः भुवन + भय + भंग + व्यसनिनः ।

पदच्छेद : त्रिनयन अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचयितदेवासुरकृपा विधेयस्य विषम् संहृतवतः तव कण्ठे यः कल्माषः आसीत् सः श्रियम् न कुरुते न अहो भुवन भयभंग व्यसनिनः विकारः अपि श्लाघ्यः ।

अन्वयार्थ : **त्रिनयन**=हे त्रिनेत्रधारी शिव । **अकाण्ड** = असमय में, **ब्रह्माण्डक्षय**=महाप्रलय, **चकित**= भयभीत हुए, **देवासुर**=देवता और राक्षसों

पर, **कृपाविधेयस्य**=दया के वश में आए हुए, **विषम्**=कालकूट विष को, **संहृतवतः**=पी लेने वाले अथवा धारण करने वाले, **तव**=आपके, **कण्ठे**=गले में, **यः**=जो, **कल्माषः**=काला दाग, **आसीत्**=लगा था, **सः**=वह, **श्रियम्**=शोभा को, **न कुरुते न**=नहीं बढ़ता है ऐसी बात नहीं, अवश्य बढ़ाता है, **अहो**=आश्चर्य है, **भुवनभय-भगव्यसनिनः**=त्रिभुवन के भय को दूर करना ही जिनका व्यसन(नशा)है उनके लिए, **विकारः अपि**=दूषण भी, **श्लाघ्यः**=भूषण बन गया।

व्याख्या : यह पुराण-प्रसिद्ध कथा है कि देवताओं और राक्षसों द्वारा समुद्र मन्थन करते समय वहां से कालकूट हलाहल विष निकल पड़ा जो सारे ब्रह्माण्ड का नाश ही कर देता। विष के वेग से ब्रह्माण्ड के नाश के भय से देवता और दानव भयभीत हुए। इस हलाहल विष को निपटाने के लिए किसी को भी सामर्थ्यवान न हेखकर और देवराज इन्द्रादि देवताओं तथा असुरों पर दया के वशीभ्त होकर और ब्रह्माण्ड को महाप्रलय से बचाने के लिए सूयं,

चन्द्र और अग्नि जिस के तीन नेत्र हैं, ऐसे त्रिनेत्रधारी भगवान शिव ने उस कालकूट हलाहल विष का पान कर दिया। इस से अतिरिक्त उस विष को शान्त करने का कोई उपाय न था। भगवान शंकर के कण्ठ तक पहुंचते ही वह विष पच गया और उनके कण्ठ में नीले रंग में शोभित होने लगा। हिम सदृश्य श्वेतवर्णांगं शंकर के कण्ठ में वह चमकने लगा और वे नीलकण्ठ नाम से विख्यात हो गए। इस प्रकार सामर्थ्यवान् के लिए दूषण भी भूषण बन गया। जगत के कल्याण हेतु दुःखादि दूर करना जिसका व्यसन है उसकी उस व्यसन से होने वाली विकृति भी श्लाघनीय हो जाती है।

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः ।
स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्
स्मरः स्मर्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्यः परिभवः
॥१५॥

संधिच्छेद : असिद्धार्था न+एव क्वचित्+अपि स+देव+असुर+नरे निवर्तन्ते नित्यम् जगति जयिनः यस्य विशिखाः स पश्यत्+ईश त्वाम्+इतर+सुर+साधारणम्+अभूत् स्मरः स्मर्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्यः परिभवः ।

पदच्छेद : ईश यस्य नित्यं जयिनः विशिखाः सदेवासुरनरे जगति क्वचित् अपि असिद्धार्थः नैव निवर्तन्ते सः स्मरः त्वाम् इतरसुरसाधारणम् पश्यत् स्मर्तव्यात्मा अभूत् हि वशिषु परिभवः न पथ्यः ।

अन्वयार्थ : **ईश**=हे ईश्वर ! **यस्य**=जिस कामदेव के, **नित्यम्**=सदैव, **जयिनः**=विजयशील, **विशिखाः**=विलक्षण शिखा वाले बाण, **सदेवासुरनरे**=

देवताओं, असुरों और मनुष्यों सहित, **जगति** =जगत में, **क्वचित अपि**=कहीं भी, **असिद्धार्थः** =कार्य को सिद्ध किए बिना, **नैव**=कभी नहीं, **निवर्तन्ते**=लौटते हैं, **सः**=वह, **स्मरः**=कामदेव, **त्वाम्**=आप को, **इतरसुरसाधारणम्**=दूसरे साधारण देवता सदृश्य, **पश्यत्**=देखता हुआ, **स्मर्तव्यात्मा अभूत**=स्मृति मात्र में हीं जो शेष रह गया, **हि**=निश्चय ही, **वशिषु**=जितेन्द्रियों के विषय में, **परिभवः**=तिरस्कार, अनादर, **न पथ्यः**=हितकर नहीं होता है ।

व्याख्या : यह श्लोक भी एक पौराणिक कथा पर आधारित है । वैसे तो महाकवि कालिदास कृत "कुमारसंभव" भो इसी पुराणकथा पर आधारित है ।

तारकासुर ने घोर तपस्या करके ब्रह्मा जी को प्रसन्न किया और अमरत्व पद का वर मांगा । मर्त्यलोक में रहने वालों की मृत्यु अवश्यमभावी है इसलिए ब्रह्मा जी ने तारकासुर से ही मृत्यु का हेतु पूछा । तारकासुर ने शंकरपुत्र से मरने का वर मांगा क्योंकि वह जानता था कि भगवान शिव की पत्नी सती मर चुकी थी और शंकर जी जितेन्द्रिय

और विरक्त हैं इसलिए न उनका पुत्र ही होगा और न तारुकासुर मरेगा ही ।

ब्रह्माजी से अभीष्ट वर प्राप्थ कर तारकासुर ने तीनों भुवन जीत लिए और देवता वहुत दुःख उठाने लगे। देवराज इन्द्र चिन्तित हुए। उन्होंने कामदेव से कहा कि वह भगवान शिव पर अपने बाणों का प्रहार करके और उनके हृदय में कामवासना को उत्पन्न करते हुए देवताओं का कार्य सिद्ध करें।

"तदगच्छ सिद्धयै कुरु
देवकार्यमर्थोऽयमर्थान्तरभाव्य एव"।
(कुमारसंभव ३/१८)

इधर से सती देवी ने पार्वती बनकर हिमालय की पुत्री के रूप में जन्म लिया था। देवर्षि नारद ने उसे कहा कि उसके पति भगवान शिव होंगे। पार्वती देवी ने घोर तपस्या की। इसका वर्णन श्रीतुलसीकृत रामायण में भी आता है। वह भगवान शिव की सेवा सुश्रुषा में तत्पर रहने लगी।

कामदेव को गर्व था कि उसके अमोघ वाण कहीं से भी, कभी भी, अपना कार्य सिद्ध किए बिना नहीं लौटे हैं।

कामदेव के बाण भी विलक्षण हैं। उनके पांच बाण हैं और वह भी पांच कुसुम—अरविन्द, अशोक, आम्र, नवमल्लिका और नीलोत्पल। इनकी न नोक है न तीक्ष्ण शिखा ही। यह मन में उथल-पुथल पैदा करके अधीर बना देते हैं और देवता, असुर, नर, पशु-पक्षी इत्यादि को सदा सर्वदा, किसी भी अवस्था में और किसी भी समय में कामान्ध बनाकर अपनी कार्यसिद्धि करके विजयी होते हैं।

कामदेव ने भगवान शिव को भी एक साधारण देवता माना। एक बार समय उपयुक्त जानकर वसन्त और मलयानिल को साथ लेकर कामदेव ने शंकर जी पर सम्मोहन नाम के अस्त्र का प्रयोग किया। उसके प्रभाव से भगवान शिव पार्वती के मुखकमल को उत्सुकतापूर्वक क्षणभर देखते रहे। दूसरे ही क्षण में अपने मन को पुनः वश करके जब मन के उस विकार के कारण को जानने के लिए उन्होंने दृष्टि को दौड़ाया तो एक कोने में खड़े कामदेव को देखा जो धनुष पर बाण चढ़ाए हुए मन्त्र प्रयोग पूर्वक अस्त्र का प्रहार करने के लिए तैयार था। तीसरे क्षण में ही भगवान शिवजी के तृतीय नेत्र से आग निकल पड़ी और उसने क्षणमात्र में कामदेव को भस्म कर डाला।

इस प्रकार जितेन्द्रिय के साथ अविवेकपूर्ण व्यवहार और दर्प कभी हितकारी नहीं होता है। इस गलती का मूल्य कामदेव को अपने प्राणों से चुकाना पड़ा और बाद में उसकी स्मृति ही शेष रह गई।

महो पादाघाताद्व्रजति सहसा संशयपदं
पदं विष्णोर्भ्राम्यद् भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् ।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ।।१६।।

संधिच्छेद : मही पाद+आघातात्+व्रजति सहसा संशय+पदम्पदम् विष्णोः+भ्राम्यद्+भुज+परिघ+रुग्ण+ग्रह+गणम् मुहुः+द्यौः+दौस्थ्यम् याति +अनिभृत+जटा+ताडित+तटा जगत्+रक्षायै त्वम् नटसि ननु वामा+एव विभुता ।

पदच्छेद : पादाघातात् मही सहसा संशय पद्म व्रजति विष्णोः पदम् भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्ण ग्रहगणम् अनिभृतजटाताडिततटा द्यौः मुहुः दौस्थ्यम् याति जगद्रक्षायै त्वम् नटसि ननु विभुता वामा एव ।

अन्वयार्थ : **पादाघातात्**=पाँव के दबाव से (प्रहार से), **मही**=पृथिवी, **सहसा**=एकदम, अचानक, **संशय**=शक की, **पदम्**=स्थिति को, **व्रजति**=

प्राप्त होती है, **पदम् विष्णोः**=विष्णुपद अथवा अंतरिक्ष, **भ्रम्यत्**=घुमाते हुए, **भुजपरिघ**=सुडौल और गोल अर्गला जैसी बाहुओं से, **रुग्ण**=पीड़ित, **ग्रहगणम्**=नक्षत्र समूह, **अनिभृत** खुली हुई, **जटा**=जटाओं से, **ताडित**–प्रहार किए गए, **तटा**=तट वाला, **द्यौः**=आकाशस्थ देवलोक, **मुहुः**=बार-बार, **दौस्थ्यम्**=दुःस्थिति को. **याति**=प्राप्त होता है, **जगद् रक्षायै**=जगत की रक्षा के लिए, **त्वम्**=आप, **नटसि**=नृत्य करते हैं, **ननु**=अहा, **विभुता**=परममहत्ता, प्रभुता, **वामा एव**=विलक्षण अथवा उल्टी ही हो जाती है।

व्याख्या : भगवान शिव जगत की रक्षा के लिए ताण्डव नृत्य करते हैं। नृत्य से जगत की रक्षा कैसे सम्बद्ध है इसका अब वर्णन करता हूं :

१. राक्षसों ने ब्रह्मा जी को प्रसन्न कर उन से वर मांगा कि वह सारे विश्व को विध्वंस कर सकें। वर तो बहुत भयानक था अतः उन्होंने उन्हें उस समय टाल दिया और कहा कि संध्या समय आओ।

२. संध्या समय को निकट आते देख और राक्षसों का वर प्राप्ति द्वारा संभावित विश्वविध्वंस से देवता लोग भगवान शंकर के पास गए और प्रार्थना की कि वह कृपया जगत की रक्षा करें।

३. शंकर भगवान ने संध्या समय के शुरू होते ही अपना सुप्रसिद्ध रोमांचकारी ताण्डव नृत्य करना आरंभ किया। नृत्य ऐसा महान था कि त्रिभुवन कांप उठा। नृत्य देख राक्षस मोहित हो गए। संध्या समय कब का बीत चुका था और राक्षस ठगे से रह गए। इस प्रकार जगत की रक्षा हुई।

४. ताण्डव नृत्य के समय भगवान शंकर ने बृहद् आकार अथवा विराट रूप उसी प्रकार धारण किया जैसे भगवान विष्णु ने वामन अवतार धारण कर एक पग से ही सारी पृथ्वी को घेर लिया था। नृत्य तेज होता गया। पहले पैर थिरकते थे अब उनकी गति तेज हुई और बृहद् पैरों की चोट पृथ्वी को असह्यय लगने लगी। वह संशय में पड़ गई कि पृथ्वी इतने कठोर ठोकरों से फट न जाए। भगवान के अंतरिक्ष लोक में भी शंकर का घूमती हुई परिघाकार भुजाओं की थपेड़ों से टूटते हुए नक्षत्रादि संदिग्ध स्थिति को प्राप्त हुए। इसी प्रकार शंकर की खुली

हुई जटाओं की चोट से जिसके किनारे ताडित हुए ऐसा स्वर्गलोक भी बारम्बार दुरवस्था को प्राप्त हो जाता था। भगवान शिव के ताण्डव नृत्य ने तीनों लोकों को संशय में डाल दिया। यह देखिए भगवान की विभुता अथवा परम-महत्ता विविध रूप से होती है कहीं अनुरूप तो कहीं विपरीत। यही विलक्षणता है विभुता में। ठीक ही तो है कार्य भी कितना बडा और कितना नाज़ुक। इसलिए उसका इलाज भी उपर्युक्त होना था। इसलिए विलक्षणता इस विभुता में निहित है।

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गगमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते ।
जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः ।।१७।।

संधिच्छेद : वियद्+व्यापी तारा+गण+गुणित+फेन+उद्गम्+रुचिः प्रवाहः वाराम् यः पृषत+लघु+दृष्टः शिरसि ते जगत्+द्वीप+आकारम् जलधि+वलयम् तेन कृतम्+इति+अनेन+एव+उन्नेयम् धृत+महिम् दिव्यम् तव वपुः ।

पदच्छेद : वियद्व्यापी तारागणगुणित फेनोद्गम रुचिः यः वाराम् प्रवाहः ते शिरसि पृषतलघुदृष्टः तेन जलधिवलयम द्वीपाकारम् जगत कृतम् अनेनैव तव दिव्यम् वपुः धृतमहिम इति उन्नेयम् ।

अन्वयार्थ : **वियद्**—आकाश में, **व्यापी**=व्याप्त अथवा सारे आकाश को आच्छादित करता हुआ, **तारागण**=नक्षत्र वृन्द से, **गुणित**=वहुत बढ़ी हुई

फेनोद्गम् रुचिः=फेनोद्गम् की कान्ति से युक्त, **यः**=जो, **वाराम् प्रवाहः**=गंगाजल का प्रवाह है, **ते शिरसि**=आप के सिर अथवा मस्तक पर, **पृषत्**=विन्दु से भी, **लघु**=छोटे कणों जैसा, **दृष्टः**=देखा गया, **तेन**=उसी जलकण से, **जलधि वलयम्**=जल से पूरित समुद्र को वलय बनाकर, **द्वीपाकारम्**=द्वीप के आकार-युक्त, **जगत् कृतम्**=जगत (पृथ्वी) को बनाया **अनेन एव**=इसी से ही, **तव दिव्यम् वपुः**=आप का दिव्य शरीर, **धृतमहिम्**=महिमा धारण करने वाला है, **इति उन्नेयम्**=इसी से अनुमान कर सकते हैं।

व्याख्या : यहां गंगा अवतरण का प्रसंग आता है। एक राजा सगर थे। उन्होंने सौ अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान किया। इस भय से कि उसकी पदवी न छिन जाए देवराज इन्द्र ने सगर के अन्तिम यज्ञ में अश्वापहरण किया और उसको चुपके से महर्षि कपिल के आश्रम में बांध आए। सगर की एक पत्नी सुमति से उत्पन्न साठ हजार बेटों ने घोड़े का पता लगाया और कपिलाश्रम पहुंचे। वहां उनके दुर्व्यवहार से

कपिल क्रोधित हुए और वह सारे क्रोधग्नि में जलकर भस्म हो गए । सगर की दूसरी पत्नी केशिनी से असमंजस नाम का एक पुत्र हुआ था । उसका एक पुत्र हुआ जिसका नाम अंशुमान था । वह कपिलाश्रम पहुंचा जहां उसे घोड़े को ले जाने की अनुमति मिली । अंशुमान के प्रार्थना करने पर ऋषि ने कहा कि उसके पूर्वजों का उद्धार गंगाजल के स्पर्श से होगा अतः गंगा को पृथ्वी पर लाने का प्रयत्न करो । अंशुमान ने प्रयत्न किया परन्तु असफल रहे और मर गए । इनके वंशजों ने प्रयत्न किया परन्तु यह श्रेय भगीरथ को ही मिला जिसनें गंगा को प्रसन्न कर पृथ्वी पर उनके पूर्वजों का उद्धार करने के हेतु अवतरण करने के लिए तैयार किया ।

गंगा पूर्वकाल में आकाश में मन्दाकिनी नाम से व्याप्त थी । उसने भगीरथ से पूछा कि स्वर्ग से अवतरण कर उसका वेग कौन धारण करेगा और उसमें पापियों के पाप धोने से वह पापमुक्त कैसे होगी ।

भगीरथ ने कहा कि भगवान शंकर आपके वेग को

धारण करेंगे। पृथ्वी पर गंगा के आने पर उसमें जो साधु-संत स्नान करेंगे तो उनके ऐसे स्पर्श से गंगा पाप मुक्त हो जाएगी।

भगीरथ ने घोर तपस्या करके भगवान शंकर को प्रसन्न किया। और गंगा के वेग को धारण करने के लिए राज़ी किया।

गंगा गर्व से बोली कि शंकर उसके वेग को कैसे धारण करेंगे। वह तो आकाश से उतर कर पृथ्वी को फाड़ कर शंकर समेत पाताल में जाएगो। ऐसा निश्चयकर गंगा तीव्रतम वेग से नीचे पृथ्वी की ओर चल पड़ो।

भगवान को किसी का गर्व मंजूर नहीं। इसी प्रसंग को इसी श्लोक में व्यक्त किया गया है।

गंगा सारे आकाश में व्याप्त थी। उसके तरंगों से उद्भूत फेनों की कान्ति तारागणों से हजारों गुनी बढ़ी हुई थी। बड़े गर्व से और तीव्र वेग से वह नीचे आई। नीचे भगवान शिव ने उसे अपनी जटाओं में धारण किया। वहां वह एक छोटे बूंद के समान रह गई। प्रयत्न करने पर भी वह जटाओं से निकलवे का कोई रास्ता न पा सकी। भागीरथ जी परेशान हो गए कि गंगा को नीचे लाया तो था परन्तु उसका मनोरथ सिद्ध न हुआ। वह फिर भगवान

शिव की आराधना में लग गए। प्रसन्न होकर भगवान शिव ने अपने भक्तोद्धारार्थ गंगा की एक छोटी धारा अपने मस्तक से छोड़ी।

सगर पुत्र जहाँ जलकर राख हो गए थे वह भूमि गँगाजल से प्लावित हो गई और सगर पुत्र दिव्य शरीर धारण कर स्वर्गलोक को चले गए।

इसी गंगा जल से अगस्त्य ऋषि द्वारा समुद्र का सारा पानी पी जाने पर उस बड़ी खाई को भगीरथ ने गंगा जल से भर दिया।

जो गंगा जल शंकर की जटा में एक छोटी सी बूंद के सदृश्य दीखती थी उन्हीं जलकणों ने स्वर्ग, पाताल और पृथ्वी में भी जलधि वलय से युक्त द्वीपाकार जगत को बनाया। इससे भगवान शिव की महिमा का अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसे करुणानिधान भक्तोद्धारक रूप को धारण किए हुए गंगाधर भगवान शंकर को हमारा कोटिशः प्रणाम।

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्राकौं रथचरणपाणिः शर इति ।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः
॥१८॥

संधिच्छेद : रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिः+अगेन्द्रः धनुः+ अथ रथ+अङ्गे चन्द्र+अकौं रथचरणपाणिः शर इति दिधक्षौः+ते कः+अयम् त्रिपुर+तृणम्+ आडम्बर+विधिः विधेयैः क्रीडन्त्यः न खलु पर+ तन्त्राः प्रभु+धियः ।

पदच्छेद : क्षोणी रथः शतधृतिः यन्ता अगेन्द्रः धनुः चन्द्राकौं रथाङ्गे अथ रथचरणपाणिः शरः इति त्रिपुरतृणम् दिधक्षोः ते अयम् कः आडम्बर-विधिः खलु विधेयैः क्रीडन्त्यः प्रभुधियः न परतन्त्राः ।

अन्वयार्थ : **क्षोणी**=पृथ्वी को, **रथः**=रथ, **शतधृतिः**= ब्रह्मा को, **यन्ता**=सारथि, **अगेन्द्रः**=मेरु पर्वत

को, **धनुः**=धनुष, **चन्द्रार्कौ**=चन्द्र और सूर्य को, **रथांगे**=रथ के दो पहिये, **अथ**=और, **रथचरणपाणिः**=स्वयं विष्णु को, **शरइति**=बाण बनाया, इस प्रकार, **त्रिपुरतृणं**=त्रिपुरासुर रूपी तिनके को, **दिधक्षो**=जलाने के लिए, **ते**=आपको, **अयं कः**=यह क्या, **आडम्बरविधिः**=व्यापक तैयारी करने की क्या आवश्यकता थी, **खलु**=परन्तु यह निश्चित है कि, **विधेयैः**=अपने अधीन वस्तुओं के साथ, **क्रीडन्त्यः**=खेल रचाने वाले, **प्रभुधियः**=प्रभु के विचित्र संकल्प, **न परतन्त्रा**=पराधीन नहीं होते हैं।

व्याख्या : इस श्लोक में भगवान शंकर की लीला करने का वर्णन है। त्रिपुरासुर (तीन भवन वाले असुर) तारकासुर के पुत्र थे। उन्होंने तपस्या करके ब्रह्मा जी को प्रसन्न किया और अमरत्व का वर मांगा जो प्रदान करना असंभव था। मर्त्य अमर नहीं हो सकता अतः निमित्तमृत्यु का होना ज़रूरी है।

ब्रह्मा जी ने विश्वकर्मा द्वारा निर्मित तीन अलौकिक विमान तीन असुरों को दिए। यह इतने बड़े थे कि प्रत्येक

में पूरे नगर जलस्थल, वन, इत्यादि उनमें समाते थे। वर अब यह मिला कि जब यह तीनों विमान एक हजार वर्ष के बाद एक विशेष मुहुर्त में एक लाइन में आएंगे और जो कोई एक ही बाण से उस समय इन तीनों विमानों को तोड़ेगा वही इन त्रिपुरासुरों को मारने वाला होगा।

वर प्राप्त कर इन तीनों असुरों ने त्रिभुवन को जीता।

समय आने पर इन तीनों असुरों की बुद्धि मलिन हो गई उन्होंने अत्याचार करके ब्राह्मण देवता आदि को दुःखित किया। देवताओं ने भगवान शंकर से प्रार्थना की कि उन्हें बचाए।

भगवान शंकर त्रिपुरासुर को एक सूखे घास के तिनके के समान सीधा जलाकर भस्म कर सकते परन्तु उनको कुछ लीला रचने की सूझी।

भगवान शंकर सर्वाधीश्वर हैं। पृथ्वी, ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, चन्द्रमा अर्थात् सब कुछ उनके अधीन हैं। उन्होंने पृथ्वी को रथ, ब्रह्मा को सारथि, विष्णु को बाण, सूर्य चन्द्र को रथ के दो चक्र, और मेरु पर्वत को धनुष बनाया। विशेष मुहूर्त को आया जानकर जब तीनों पुरों का एक ही लाइन में मिलान होना था उसी समय पर भगवान शंकर

ने बाण चलाकर और तीसरे नेत्र से क्रोधाग्नि छोड़कर त्रिपुरों का और असुरों का सर्वनाश किया। इतना बड़ा आडम्बर इसलिए रचा गया क्योंकि अपने आधीन उपकरणों से लीला रचने वाली इच्छाएं पराधीन नहीं होतीं।

दक्षिण के शैवसिद्धांत परम्परा के अनुसार जब रथ आदि युद्ध का सामान बन गया तो ब्रह्मा आदि देवताओं ने परस्पर यह बातें की कि यदि हम शिवजी की सहायता को न आते तो युद्ध सामग्री के न होते हुए वे क्या कर सकते। शिवजी इस बात को जान गए। उनके इस गर्व को चूर करने के लिए उन्होंने रथ, धनुष बाण आदि का प्रयोग न करते हुए केवल अपने तृतीय नेत्र के दृष्टिपात से ही तीनों पुरों को उन असुरों के समेत भस्म कर डाला और देवगण इस लीला को देखते ही रह गए। उनका गर्व नष्ट हो गया और शिवजी के प्रति नतमस्तक हो गए।

हरिस्ते साहस्त्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन् निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम्।।१९

संधिच्छेद : हरिः+ते साहस्त्रम् कमल+बलिम्+आधाय पदयोः+यत्+एकः+ऊने तस्मिन् निजम्+उदहरत्+नेत्रकमलम् गतः भक्ति+उद्रेकः परिणतिम्+असौ चक्रवपुषा त्रयाणाम् रक्षायै त्रिपुर+हर जागर्ति जगताम् ।

पदच्छेद : त्रिपुरहर हरिः ते पदयोः साहस्त्रम् कमलबलिम् आधाय तस्मिन् एकोने यत् निजम् नेत्र कमलम् उदहरत् असौ भक्त्युद्रेकः चक्रवपुषा परिणतिम् गतः त्रयाणाम् जगताम् रक्षायै जागर्ति ।

अन्वयार्थ : **त्रिपुरहर**=त्रिपुर नाशक शिव ! **हरिः**= भगवान विष्णु, **ते**=आपके, **पदयोः**=चरणों में, **साहस्त्रम्**=एक हजार, **कमलम्**=कमल के फूलों

की, **बलिम्**=भेंट, **आधाय**=समर्पण करके अर्थात् समर्पण करते हुए, **तस्मिन्**=उन गिने हुए हज़ार कमलों में से, **एकः ऊने**=एक बार एक कमल के कम हो जाने पर, **यत्**=(उस फूल की कमी को पूरा करने के लिए) जो, **निजम्**= अपने, **नेत्रकमलम्**=नेत्र रूपी कमल को, **उदहरत्**=निकाल कर भेंट किया, **असौ**=वही, **भक्त्युद्रेकः**=भक्ति का आवेग, **चक्रवपुषा**=चक्र (सुदर्शन चक्र) के रूप में, **परिणतिम्**=परिणाम को, **गतः**=प्राप्त हुआ, **त्रयाणाम्**=तीनों, **जगताम्**=लोकों की, **रक्षायै**=रक्षा के लिए, **जागर्ति**=आज भी जागरूक है, सावधान है ।

व्याख्या : इस श्लोक में हरि और हर की भक्ति का एक अद्भुत् नमूना पेश है ।

भगवान विष्णु जगत की रक्षा के कार्यभार को संभालते हैं जैसे ब्रह्मा जी को सृष्टि का कार्यभार सौंपा गया है । भगवान विष्णु इस जगत की रक्षा अपने सुदर्शन चक्र से करते हैं । अब हम देखेंगे कि यह चक्र उनको भगवान शिव से ही प्राप्त हुआ ।

भगवान विष्णु नियमित रूप से विधिवत् भगवान शिव की पूजा करते थे । वे प्रतिदिन एक हजार कमल

तोड़कर और अन्य पूजा सामग्री जुटाकर आकाशगंगा के किनारे शिवलिंग की पूजा करते थे। नियम यह बनाया था कि एक हज़ार कमल शिव सहस्त्रनाम के साथ अर्पण करने हैं। अतः वह नित्य पूरे एक हजार कमल (न एक कम न एक ज्यादा) तोड़ के लाते थे। कम इसलिए नहीं कि नियम पूरा नहीं होगा वह यह कि एक-एक नाम पर कमल चढ़ाना था। एक बार पूजा करते हुए एक कमल की जब कमी पड़ गई तो उस कमी को पूरा करने के लिए उठके फिर और कमल लाते तो अधूरी पूजा और फिर उठ के चले जाने पर नियम भंग होता। ज्यादा इसलिए नहीं कि बचे हुए कमल व्यर्थ जाते। इस श्लोक में कमलों की बलि चढ़ाने की बात आती है। पुष्प को ढाल से, वृक्ष से तोड़ा जाता है उसको तोड़ा गया अथवा उसका जीवन काल समाप्त किया गया परन्तु जब इसी फूल को भगवान शिव के चरण कमलों की भेंट (बलि) चढ़ाया गया तो उस फूल को तोड़ा जाना अथवा बलि होना सार्थक हो गया। ज्यादा पुष्प तोड़े जाएं तो उनका जीवन व्यर्थ हो जाता। पौधे को भी और पुष्प को भी दुःख पहुंचता। धर्म की जगह अधर्म हो जाता। अतः फूल कभी व्यर्थ न तोड़े जाएं। पूजार्थ जितने आवश्यक हैं उतने ही, न कम न ज्यादा।

हरि हर में अन्तर नहीं। एक बार भगवान शिव को विष्णु की भक्ति को परीक्षा लेने का विनोद सूझा। भगवान भक्त की परीक्षा लेते ही हैं उस परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ तो बेड़ा पार। भगवान शिव ने एक कमल एक हजार में कम कर दिया इसका भगवान विष्णु को पता न चला। जब सहस्त्रार्चन में अन्त में एक कमल कम पड़ गया तो नियम, विधि और शिष्टाचार के ज्ञाता और पालक भगवान विष्णु ने अपनी उत्कृष्ट भक्ति में उस कमल की कमी को पूरा करने के लिए अपना कमलरूपी नेत्र उखाड़ा और भगवान शिव के चरणकमलों में भेंट कर सहस्त्रार्चन पूरा किया। भगवान शिव इस अनन्य भक्ति से प्रसन्न हुए और प्रकट होकर भगवान विष्णु को सुदर्शन चक्र प्रदान किया जो तोनों लोकों की रक्षा के लिए आज भी सजग है।

भगवान विष्णु, रावण इत्यादि समर्थ थे, सशक्त थे। हम उनका अनुकरण नहीं कर सकते। हम तो क्षमा याचना कर सकते हैं, आपद्धर्म निभा सकते हैं, अपनी दृष्टि भक्तिपूर्वक समर्पित कर सकते है और भगवान शिव हमारी सुदृढ़ भक्ति से प्रसन्न होकर हमें भी सुदर्शन (सुदृष्टि) से, अपनी कृपा दृष्टि से अनुग्रहीत करेंगे।

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते ।
अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः
॥२०॥

संधिच्छेद : क्रतौ सुप्ते जाग्रत्+त्वम्+असि फल+योगे क्रतुमताम् क्व कर्म प्रध्वस्तम् फलति पुरुष+आराधनम्+ऋते, अतः+त्वाम् सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदान+प्रतिभुवम् श्रुतौ श्रद्धाम् बद्ध्वा दृढ़+परिकरः कर्मसु जनः ।

पदच्छेद : क्रतौ सुप्ते क्रतुमताम् फलयोगे त्वम् जाग्रत् असि पुरुषाराधनमृते प्रध्वस्तम् कर्म क्व फलति अतः क्रतुषु त्वाम् फलदानप्रतिभुवं संप्रेक्ष्य जनः श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा कर्मसु दृढपरिकरः ।

अन्वयार्थ : **क्रतौ**=यागादि कर्म, **सुप्ते**=समाप्त हो जाने पर, **क्रतुमताम्**=यागादि कर्मों के करने वालों को, **फलयोगे**=फल प्राप्ति कराने के लिए,

त्वम्=आप, **जाग्रत् असि**=जागते रहते हैं, **पुरुष**=ईश्वर की, **आराधनम्**=आराधना के, **ऋते**=बिना, **प्रध्वस्तम् कर्म**=समाप्त हुए अथवा नष्ट हुए कर्म, **क्व फलति**=कहां स्वयं फल देते हैं, **अतः**=इसलिए, **त्वाम्**=आप शिव को, **फलदानप्रति भुवं**=फल देने के जिम्मेदार, **संप्रेक्ष्य**=अच्छी प्रकार जानकर, निःशंक हुए, **जनः**=यागादि कर्म करने वाले लोग, **श्रुतौ**=श्रुति में, वेदादि शास्त्रों मे, **श्रद्धां बद्ध्वा**=श्रद्धा बांधकर पूर्ण विश्वास के साथ, **कर्मसु**=वेदादि शास्त्र विहित कर्मों के करने में, **दृढ़परिकरः**=दृढ़ता पूर्वक कमर बांधे हुए प्रवृत्त होते रहते हैं।

व्याख्या : क्या यागादि कर्म किए जाने पर स्वयमेव फल देने वाले बनते हैं या उपयुक्त समय और स्थान प्राप्त होने पर उसका फल कोई और अथवा ईश्वर देता है। इस बारे में कुछ मत मतान्तर उत्पन्न हुए हैं। इस श्लोक में श्री पुष्पदन्ताचार्य जी ने व्यर्थ के तर्क-वितर्क को समाप्त कर स्पष्ट कर दिया है कि भगवान शिव ही कर्मफलदाता हैं। पानी पीने पर प्यास बुझती है, दीप जलाने पर प्रकाश होता है। कारण के अनन्तर ही बिना कालक्षेप कार्य की

उत्पत्ति होती है। हम यज्ञ आज करते हैं। उसका फल भी आज ही मिल जाना चाहिए। यज्ञ कर्म आज समाप्त हुआ। उसका कोई भाग शेष नहीं रहा तो वर्षों बाद उसका फल कौन देवे। इस शंका का समाधान इस श्लोक के द्वारा किया गया है।

यागादि कर्म शीघ्रविनाशस्वभाव के कारण सूक्ष्मरूप को प्राप्त होकर नष्ट हो जाते हैं। फिर कालान्तर में इन कर्मों के किए फलस्वरूप स्वर्गादि की प्राप्ति कैसे होती है। कर्म स्वयं जड़ है। जड़ स्वयं फलदाता नहीं हो सकता। जड़ को चेतना देनी पड़ती है और कालस्थानादि उपयुक्त होने पर फलीभूत हो जाएगा। उदाहरणार्थ बीज स्वयम् क्या फल देगा। बीज का होना आवश्यक है उसको जब तक जमींदार खेती में नहीं बोयेगा, पानी नहीं देगा, देखभाल नहीं करेगा, तब तक बीज से फल कैसे प्राप्त होगा। इसी प्रकार दृश्य और अदृश्य कर्म (पाप और पुण्य) का लेखा-जोखा रखने वाला ईश्वर ही है जो कालस्थानादि आने पर फल देता है। परन्तु यह अनिवार्य है कि ईश्वर आराधना बिना यागादि कर्म फलीभूत नहीं हो सकते। इस प्रकार भगवान शिव को ज़मानती के रूप में अच्छी प्रकार जानकर शास्त्रों में पूर्ण विश्वास रखकर उनमें विहित कर्मों को करने में लोग

दृढ़तापूर्वक प्रवृत्त हो जाते हैं। कर्म पूरा होते ही उसकी सत्ता नष्ट हो जातो है। परन्तु भगवान ही उस वर्षों पहले नष्ट हुए कर्म का फल वर्षों बाद देता रहता है। तभी लोग श्रद्धा पूर्वक यज्ञ आदि कर्म करते रहते हैं।

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता-
मृषीणामार्त्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः ।
क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः
॥२१॥

संधिच्छेद : क्रिया + दक्षः दक्षः क्रतु + पतिः + अधीशः + तनुभ्रताम् + ऋषीणाम + आर्त्त्विज्यम् शरणद सदस्याः सुर + गणाः क्रतु + भ्रंशः + त्वत्तः क्रतु + फल + विधान + व्यसनिनः ध्रुवम् कर्तुः श्रद्धा + विधुरम् + अभिचाराय हि मखाः ।

पदच्छेद : शरणद क्रियादक्षः तनुभृताम् अधीशः दक्षः क्रतुपतिः ऋषीणाम् आर्त्त्विज्यम् सुरगणाः सदस्याः क्रतुफलविधानव्यसनिनः त्वत्तः क्रतुभ्रंशः हि ध्रुवं श्रद्धाविधुरं मखाः कर्त्तुः अभिचाराय ।

अन्वयार्थ : **शरणद**=शरण देने वाले, **क्रियादक्षः**=यज्ञ आदि क्रियाओं के करने में कुशल, **तनुभृताम्**=देहधारियों के, **अधीशः**=स्वामी, अधिपति

अथवा राजा, **दक्षः**=दक्ष प्रजापति नाम वाला, **क्रतुपतिः**=यजान अथवा यज्ञकर्ता, **ऋषीणाम्** =बहुत ऋषियों का, **आर्त्विज्यं**=पौरोहित्य, अर्थात् पौरोहित्य का कार्य करने वाले ऋषिगण थे, **सुरगणाः**=देवताओं के समूह, **सदस्या**= सदस्य थे, अर्थात् देवगण यज्ञ में आमन्त्रित थे, **क्रतुफलविधान**=यज्ञ आदि कर्म के फल प्रदान करने के नियम को चलाने में, **व्यसनिनः** =सदा तत्पर रहने वाले, **त्वत्तः**=आपके द्वारा ही, **क्रतुभ्रंशः**=यज्ञ का विध्वंस हुआ, **हि**- क्योंकि, **ध्रुवम्**=निश्चय ही, **श्रद्धाविधुरं**=श्रद्धा के बिना किए हुए, **मखाः**=यज्ञ आदि, **कर्त्तुः**= यज्ञ करने वाले यजमान के लिए, **अभिचाराय** =अभिचार बन जाते हैं अर्थात् हानि या विनाश करने वाली तांत्रिक क्रियाएं बन जाते हैं।

व्याख्या : यह श्लोक पुराण कथा पर आधारित है। इस प्रसंग का विस्तृत वर्णन महाभारत, श्री शिवपुराण आदि में आता है। यहां पर पाठकलाभार्थ यह प्रसंग संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है।

महर्षि दक्ष प्रजापति थे। यागादि कर्मों के करने में निपुण थे। महाशक्तिशाली थे। इनके ही घर जगदम्बा सती के रूप में पुत्री बन कर अवतीर्ण हुई। सती भगवान शिव की अर्धांगिनी बनी। अतः भगवान शिव दक्ष के जामाता हुए। राजा दक्ष भगवान शिव से असन्तुष्ट थे।

एक बार एक सभा में, जहां देवता, ब्रह्मा, ऋषि इत्यादि उपस्थित थे, वहां शिवजी भी बैठे थे। वे सभा के भीतर ही शाम्भवी मुद्रा में तन्मय हो गए। उसी समय वहां दक्ष प्रजापति पधारे। सभी देवगण उनके सत्कार के लिए खड़े हो गए। शिव जी शाम्भव समावेश में स्थित होते हुए इतने तन्मय थे कि बाहरी विषयों के प्रति उनका चित्त गया ही नहीं, न दृष्टि ही गई अतः वे उस समय समाधि में बैठे ही रहे, खड़े नहीं हुए। इस बात को दक्ष प्रजापति ने बहुत बुरा माना। तब से वे शिव से वैर करने लगे और शिवद्वेशी बन गए।

एक बार दक्ष प्रजापति ने शिव का तिरस्कार करने की सोची। उसने यह योजना बनाई कि एक सुविशाल यज्ञ किया जाए, सभी देवताओं, को पूजन हवन आदि से सन्तुष्ट किया जाए परन्तु शिव को यज्ञ में बुलाया ही न जाए। तदानुसार दक्ष प्रजापति ने एक बहुत बड़े यज्ञ का अनुष्ठान

किया। इस यज्ञ में वे स्वयं यजमान बने। त्रिकालदर्शी भृगु जैसे ऋषिगण पुरोहित का काम करने आए। ब्रह्मादि देवगण यज्ञ सदस्य थे। केवल भगवान शिव को आमन्त्रित नहीं किया गया। सती शिव के द्वारा समझाने पर भी बिना ही निमन्त्रण के यज्ञ में चली गई। उसने देखा कि सभी देवताओं की पूजा हो रही है, सभी के लिए आसन सजाए गए हैं परन्तु शिव के लिए कुछ भी नहीं किया गया है। फिर सती के लिए यह अपमान असह्य हो गया। वहां उसका भी अनादर हुआ। उसने देखा कि भगवान शिव का भाग भी यज्ञ में नहीं रखा गया है। वह क्रोधित हुई। अपने पति का इतना अपमान उसके लिए बहुत असह्य हुआ। उसने अपने पिता से कहा कि तू शिव का अपमान करने वाला महापातकी है। मेरा यह शरीर तुम जैसे पातकी के शरीर का अंश है। अतः मैं इस शरीर का अभी परित्याग कर रही हूं। मैं अब इसे रखना नहीं चाहती हूं। ऐसा कह कर उसने योगबल से शरीर का परित्याग यज्ञ-भूमि में ही कर दिया। जब भगवान शिव को यह ज्ञात हुआ तो फिर क्या था। वह क्रुद्ध हुए और वीरभद्र को आदेश दिया कि वह यज्ञ का विध्वंस करे। ऐसा ही हुआ और दक्ष का सिर काट दिया। उथल-पुथल मच गई तबाही हुई और सब भयभीत हो गए।

भगवान शिव तो यागादि कर्मों के फल देने में सदा तत्पर रहते हैं परन्तु भगवान शिव की अप्रसन्नता से सर्वसामग्री इत्यादि से सम्पन्न दक्ष के इतने महान यज्ञ का विध्वंस हो गया। जो यागादि कर्म श्रद्धा और भावना के बिना किए जाते हैं वे निस्संदेह ही करने वाले का नाश ही करते हैं। भगवान शिव की अवज्ञा कर संसार में कोई सुखी नहीं हो सकता। इस तरह से उतना सुविशाल वैदिक यज्ञ दक्ष के लिए मानो विनाशकारी अभिचार कर्म ही बन गया।

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा ।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतमभुं
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः
॥२२॥

संधिच्छेद : प्रजानाथम् नाथ प्रसभम्+अभिकम् स्वाम् दुहितरम् गतम् रोहिद्भूताम रिरमयिषुम्+ ऋष्यस्य वपुषा धनुष्णाणे+यातम् दिवम्+अपि सपत्रा+कृतम्+अमुम् त्रसन्तम् ते+अद्य+अपि त्यजति न मृगव्याधरभसः ।

पदच्छेद : नाथ प्रजानाथं अभिकं स्वां दुहितरं रोहिद्भूताम् ऋष्यस्य वपुषा रिरमयिषुं प्रसभम् गतम् मृग-व्याधरभसः धनुष्पाणेः ते सपत्राकृतम् त्रसन्तं दिवं यातम अपि अमुम अद्य अपि न त्यजति ।

अन्वयार्थ : **नाथ**=हे विश्वनाथ, **प्रजानाथं**=ब्रह्मा, **अभिकं** =कामातुर होकर, **स्वां**=अपनी, **दुहितरम्**=

पुत्री के साथ, **रोहिद्भूताम्**=जो लज्जा की मारी मृगी बनी, **ऋष्यस्य**=ब्रह्मा मृग का, **वपुषा**=शरीर, रूप धारण कर, **रिरमयिषुं**=रतिक्रीडा के लिए, **प्रसभम्**=ज़बरदस्ती, **गतम्**=गए, **मृगव्याधारभसः**=मृगों का शिकार करने वाले तुझ शिकारी से होता हुआ भय, **धनुष्पाणेः**=हाथ में धनुष लिए, **ते**=आपके, **सपत्राकृतम्**=बाण के भय से पीड़ित हुए, **त्रसन्तं**=और भयभीत हुए, **दिवं**=अन्तरिक्ष में, **यातम अपि अमुम्**=गए हुए भी उस ब्रह्मा को, **अद्य अपि**=आज भी, **न त्यजति**=नहीं छोड़ता है, वह आज भी उसका पीछा कर रहा है और आज भी ब्रह्मा डर से आकाश में भागता ही जा रहा है।

व्याख्या : भगवान शिव विश्वनाथ हैं शिष्टाचार के वे स्वयं रक्षक हैं। जगत को नियंत्रित स्थिति में रखते हैं और जहां भी लोकमर्यादा का उल्लंघन हुआ वहां घोर दण्ड देते हैं। ऐसी ही स्थिति एक बार आ पहुंची।

ब्रह्मा जी की मानस पुत्री संध्या थी। वह अतीव रूपलावण्य से परिपूर्ण थी। एक बार ब्रह्माजी अपनी इसी

पुत्री संध्या को अतीव रूपवती देखकर कामातुर हुए और उसके साथ रतिक्रीडा को उद्यत हुए। संध्या ने जब यह देखा कि यह मेरे पिता होते हुए भी मेरे साथ ऐसा अश्लील व्यवहार करने को उद्यत हुए हैं तो वह भय से मृगी बनकर भाग निकली। उसको ऐसा देखकर ब्रह्मा ने भी मृग का रूप धारण किया और उसका पीछा करने लगे।

"कामातुराणां न भयं न लज्जा"

जगत् नियन्त्रण करने वाले श्री महादेव ने देखा कि ब्रह्मा जो कि धर्म प्रवर्तक हैं वह भी ऐसा अशिष्ठ आचरण करके स्वमर्यादा का उल्लंघन करके बहुत बड़े अपराधी हैं इसलिए उन्हें दण्ड देना आवश्यक है। धनुष उठा कर श्रीमहादेव जी ने बाण छोड़ा। बाण से पीड़ित और व्यथित हो ब्रह्मा अंतरिक्ष में मृगशिर नक्षत्र बन गया परन्तु श्री महादेव जी का बाण भी आर्द्रा नक्षत्र बनकर उसके पीछे लगा। स्थिति यह है कि इन दोनों नक्षत्रों का संनिधान आज भी विद्यमान है।

इस श्लोक को कोई प्रक्षिप्त मानते हैं और कोई अनौचित्य की शंका से न तो इसका पाठ ही करते हैं और न इसे स्तोत्र में प्रकाशित ही करते हैं। वे इसमें अनैतिकता

को देखते हैं। वस्तुतः श्री पुष्पदन्त ने भक्ति के आवेश में ऐसी अश्लील पौराणिक कथा को भी स्तोत्र में भर ही दिया। भक्ति की उत्कटता के कारण उसे इस बात में कोई अनौचित्य नहीं प्रतीत हुआ।

अपूर्वं लावण्यं विवसनतनोस्ते विमृशतां
मुनीनां दाराणां समजनि स कोऽपि व्यतिकरः
यतो भग्ने गुह्ये सकृदपि सपर्यां विदधतां
ध्रुवं मोक्षोऽश्लीलं किमपि पुरुषार्थं प्रसवि ते
॥२३॥

संधिच्छेद : अपूर्वम् लावण्यम् वि+वसन+तनोः+ते विमृशताम् मुनीनाम् दाराणाम् समजनि स कः +अपि व्यतिकरः यतः भग्ने गुह्ये सकृत्+अपि सपर्याम् विदधताम् ध्रुवम् मोक्षः+अश्लीलम् किम्+अपि पुरुषार्थं प्रसवि ते ।

पदच्छेद : विवसन तनोः ते अपूर्वम् लावण्यम् विमृशताम् मुनीनाम् दाराणाम् स कोऽपि व्यतिकरः समजनि यतो ते गुह्ये भग्ने सकृदपि सपर्याम् विदधताम् ध्रुवम् मोक्षः (ते) किमपि अश्लीलम् पुरुषार्थ प्रसवि ।

अन्वयार्थ : **विवसनतनोः**=नग्न शरीर वाले, **ते**=तुम्हारे अर्थात् सुन्दर शरीर में प्रकट हुए शिवजी के, **अपूर्वम् लावण्यम्**=अनुपम सौन्दर्य को, **विमृशताम्**=विमर्श करने वाली अर्थात् उस

सौन्दर्य पर, मुग्ध होकर उस पर आसक्त हुईं, **मुनीनाम् दाराणाम्**=मुनियों की पत्नियों का, **स**=वह, **कोऽपि**=कोई न बतलाने के योग्य, ★ **व्यतिकरः**=विचारों का सम्मिलन, अर्थात कामासक्ति का विचार, **समजनि**=उत्पन्न हो गया। तात्पर्य यह है कि जब मुनियों ने अपनी पत्नियों के उस मनोविकार को देख लिया तो उन्हें क्रोध आया। क्रोध के आवेश में आकर उन्होंने जब आपको शाप दिया तो, **यतो**=जिस (उस) क्रोध से, **ते गुह्ये**=तुम्हारे गुह्य इन्द्रिय के, **भग्ने**=टूट कर गिर जाने पर, **सकृदपि**=एक बार भी, **सपर्याम्**=उसकी पूजात्मक सेवा को, **विदधताम्**=करने वाले तुम्हारे भक्तों को, **ध्रुवम्**=अवश्य ही, **मोक्षः**=मुक्ति मिल जाया करती है, तो इस तरह से, **(ते)**=तुम्हारा, **किमपि अश्लीलम्**=कोई अश्लील अंग भी, **पुरुषार्थ प्रसवि**=उत्तम पुरुषार्थ को अर्थात् मुक्ति को देने वाला (फलित करने वाला) होता है। जब तुम्हारे अश्लील अंग की पूजा से मुक्ति जैसे जीवन के प्रयोजन फलित होते हैं तो तुम्हारे पादकमलों की पूजा करने वाले क्या-क्या पा लेते होंगे, इस बात को कौन जान सके।

व्याख्या : इस श्लोक के विषय में भी पूर्वश्लोकवत् ही विद्वानों का विचार है। परन्तु कश्मीर में इस श्लोक के स्तोत्र के अन्तर्गत ही पाठ करने की परम्परा है।

लिंग पूजा एक अतीव प्राचीन परम्परा है। लिंग और योनि शिव और शक्ति के प्रतीक हैं। परतत्त्व ही शिवरूप में जगत के पिता हैं और शक्तिरूप में जगत की माता हैं। अतः लिंग योनि संघट्ट के रूप में उनकी प्रतिमा की पूजा की जाती है। यह उस पूजा का दार्शनिक रहस्य है। परन्तु अबोध जनता के विचार से एक पौराणिक परम्परा में भी प्रचलित हुई है। वह परम्परा शैव पुराणों में और त्रिपुरा-रहस्य में बताई गई है। इस तरह से इस पौराणिक कथानक को लेकर ही श्री पुष्पदंत जी ने भगवान शिव की यह स्तुति गाई है। यह कहानी भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में ज़रा-ज़रा भिन्न-भिन्न प्रकार से कही गई है। त्रिपुरारहस्य में मुनियों ने ही अपनी पत्नियों की कामपीडामयी बुरी हालत को देखकर गुह्यांग के टूट कर गिर जाने का शाप भगवान को दिया। ऐसा कहा गया है।

नोट : *व्यतिकर शब्द के कई अर्थ Apte के कोष में दिए गए हैं। यहां उन अर्थों में से affair, occurence और incident ठीक लगते हैं।

स्वलावण्याशंसाधृतधनुषमह्नाय तृणव-
त्पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि ।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरतदेहार्धघटना-
दवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः ।।२४।।

संधिच्छेद : स्व + लावण्य + आशांसा + धृत + धनुषम् + अह्नाय तृणवत् पुरः प्लुष्टम् दृष्ट्वा पुर + मथन पुष्प + आयुधम् + अपि यदि स्त्रैणम् देवी यम + निरत + देह + अर्ध + घटनात् + अवैति त्वाम् + अद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः ।

पदच्छेद : पुरमथन स्वलावण्याशंसा धृतधनुषम् पुष्पायुधम् अह्नाय तृणवत् पुरः प्लुष्टम् दृष्ट्वा अपि देहार्धघटनात् यदि देवी त्वां यमनिरत स्त्रैणम् अवैति वरद बत युवतयः अद्धा मुग्धाः ।

अन्वयार्थ : **पुरमथन**=हे त्रिपुरारि ! **स्व+लावण्य+आशंसा**=अपने अथवा देवी पार्वती के अपूर्व सौन्दर्य द्वारा परम योगी शिवजी को जीतने की आशा से, **धृतधनुषम्**=धनुष को धारण करने

वाले, **पुष्पायुधम्**=जिसके अस्त्र और शस्त्र पुष्प हैं ऐसे कामदेव को, **अह्नाय**=क्षण भर में, **तृणवत्**=सूखे घास के तिनके की भांति, **पुरः**=सामने, **प्लुष्टं**=दग्ध हुआ, **दृष्ट्वा अपि**=देखकर भी, **देह**=शरीर, **अर्ध**=आधा, **घटनात्**=स्थापित करके (अपने शरीर को शिव के शरीर के आधे भाग स्थापित करके) **यदि**=अगर, **देवी**=देवी पार्वती, **त्वाम्**=आपको, **यमनिरत**=जो यम, नियम, आसन आदि अष्टांगयोगपरायण हैं, **स्त्रैणम्**=स्त्री आसक्त, **अवैति**=कल्पना करती है तो, **वरद**=हे वर देने वाले, देवी पार्वती को अपने शरीर के अर्धभाग में स्थापित करने का अतिदुर्लभ वर देने वाले, **बत**=अहो, **युवतयः**=युवतियां, **अद्धा मुग्धाः**=वस्तुतः भोली होती हैं।

व्याख्या : देवराज इन्द्र ने जब कामदेव को देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए भगवान शिव पर अपने अमोघ बाणों का प्रहार करने के लिए भेजा तो इस कार्य सिद्धि के लिए एक स्त्री का होना आवश्यक था। कामदेव ने इस कार्य के लिए देवी पार्वती का आश्रय लिया। देवी पार्वती का सौन्दर्य माधुर्य अनुपम था। उसके द्वारा शिवजी को

जीतने की आशा से कामदेव ने अपने पांचों अनुपम बाणों का संधान किया। उसको देखकर भगवान शंकर ने अपना तीसरा नेत्र खोला और उस प्रचण्ड क्रोधाग्नि ने कामदेव को सूखे घास के तिनके की तरह क्षण भर में जला डाला। पास में जले हुए कामदेव को देखकर भी समयोपरान्त जब शिवजी ने देवी पार्वती को अपनी अर्धांगिनी बनाया तब भी यदि देवी पार्वती ने भगवान शिव, जो यमनियमासानादि अष्टांगयोगपरायण रहते हैं, उन्हें स्त्री-आसक्त होने की शंका की, तो यह युवतियों के भोलेपन का परिणाम है।

कामदेव के भस्म होने के पश्चात् देवी पार्वती ने भगवान शिव को वर रूप में प्राप्त करने के लिए बहुत कठोर तप इत्यादि किया। शिव जी ने वेश बदल कर तपस्विनी पार्वतो की अनेक प्रकार से परीक्षा ली। परन्तु वह दृढ़ रही। उनके त्याग, तपस्या एवं दृढ़ता से अतीव दुर्लभ वर देकर उन्हें अपना अर्धांगिनी बनाया और अर्धनारीश्वर की उपाधि से अपने भक्तों में प्रसिद्ध हुए।

"यदि" इस शव्द के प्रयोग से देवी पार्वतो में मुग्धता होने में शंका है। परन्तु मुग्धता अथवा भोलापन स्त्रियों का आभूषण है। इस को धारण कर पार्वती जी अपने लोकातीत सौन्दर्य को बढ़ा रही हैं। अतएव अयुक्त को भी युक्त कह दिया गया है।

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः ।
अमंगल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मंगलमसि ॥२५॥

संधिच्छेद : श्मशानेषु+आक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सह+चराः चिता+भस्म+आलेपः स्रग्+अपि नृ+करोटी+परिकरः अमंगल्यम् शीलम् तव भवतु नाम+एवम्+अखिलम् तथा+अपि स्मर्तॄणाम् वरद परमम् मंगलम्+असि ।

अन्वयार्थ : **स्मरहर**=कामदेव के नाशक, **श्मशानेषु**=शमशानों में, **आक्रीडा**=कीडा करना, **पिशाचाः**=भूतप्रेत पिशाच आदि, **सहचराः**=साथ चलने वाले साथी, **चिताभस्मालेपः**=चिताओं में जले हुए मुर्दों की राख का लेपन करना, **स्रग्अपि**=माला भी, **नृ**=मनुष्यों की, **करोटी**=खोपडियों के, **परिकरः**=समूह की, **एवम्**=इसके अतिरिक्त गजचर्म आदि, **तव**=आपके,

अखिलम् शीलम्=सभी स्वभाव और चरित्र, **अमगंल्यम्**=अमंगल के सूचक, **भवतु नाम**= भले ही कहने के लिए हों, **तथापि**=तब भी वास्तव में, **वरद**=हे वाञ्छित फल देने वाले भगवान् शिव, **स्मतृ्णाम्**=आप को स्मरण करने वालों के लिए आप, **परमम्**=उत्कृष्ट, **मंगलम् असि**=मंगल रूप हैं ।

व्याख्या : भगवान् महेश्वर का अखिल चरित महान् है असाधारण और असामान्य सा है । इन का क्रीडास्थल तो देखिए वह कोई स्टेडियम नहीं है परन्तु श्मशान जहां शव पड़े रहते हैं जहां रोना-धोना होता है और जहां से शव-यात्रा में सम्मिलित जनता को नहा धो के ही अपने को पवित्र करके ही घर लौटना होता है ।

अब भगवान शिव के संगी साथी तो देखिए, भूत, प्रेत, पिशाचादि-घरों में यदि भूत प्रेत का वास हो तो उन्हें भगाने के लिए तंत्र मंत्र इत्यादि का प्रयोग किया जाता है । इनके संग में रहने से भूतनाथ ही तो कहलाते हैं ।

सामान्यतः शरीर में सुगन्धित तेल, पाउडर इत्तर इत्यादि लगाए जाते हैं परन्तु हमारे कामारि महादेव जी का उबटन जले हुए शवों के भस्म से होता है । शव भस्म

न घर में लाया जाता है न प्रयोग में ही लाया जाता है न प्रयोग में ही लाया जाता है क्योंकि इसे अपवित्र माना जाता है। उसी शव भस्म से महादेव जी अपने सारे शरीर का उद्धूलन करते।

अब उनकी माला तो देखिए। सुगन्धित पुष्पों की हो, सोने की हो, हीरे जवाहरात की हो। परन्तु वहां मनुष्यों की खोपडियों की कतारों की बनो हुई माला है। शव की अस्थियों (हड्डियों) को गंगाजी या प्रयाग इत्यादि में बहाने के लिए उस शव के बन्धु बान्धव उन अस्थियों को कहीं पेड़ पर या मन्दिर के किसी दूर कोने में या निर्जन-स्थल में घर से दूर रखते हैं। इतना अपवित्र अथवा अमांगलिक शवास्थियों को माना जाता है परन्तु हमारे त्रिपुरारिजी तो शव कपालों की माला पहन कर आनन्दित होते हैं।

"स्रगपि" में अपि पद का प्रयोग है। अपि शब्द से ऊपर कहे हुए वस्तुओं के अतिरिक्त गजचर्म इत्यादि को इंकित किया गया है।

इस प्रकार भगवान शिव के चरित्र चित्रन से यह शंका होती है कि उनका शील अमंगल का द्योतक है। परन्तु इस शंका का तुरन्त ही निराकरण किया जाता है। अरे अमंगल कैसा। भगवान शिव वस्तुतः परम मंगलस्वरूप

हैं। जो भक्तजन उनका स्मरण करते हैं उनके लिए वह परम मंगल हैं। उनका चिन्तनादि करने से सब प्रकार का कल्याण, सुख, शान्ति और परमानन्द की प्राप्ति होती है। यह वही शिव हैं :

आंशिक

स्तुति ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयिगिरः (श्लोक १)
अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयोः(,, २)
तव ब्रह्मन्कि वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् (,, ३)
त्रयीवस्तु व्यस्तं तिसृषू गुणभिन्नासु तनुषु (,, ४)
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव (,, ७)
सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवदभ्रूप्रणिहितां (,, ८)
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृतिर्न फलति (,, १०)
स्थिरायास्त्वद भक्तेर्स्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम्
(,, ११)
न कस्या उन्नतयै भवति शिरस्त्वय्यवनतिः (,, १३)
विषं संहृतवतः (,, १४)
स्मरः स्मर्तव्यात्मा न हि वशिषु पथ्यः
परिभवः (,, १५)
जगद्रक्षायै त्वं नटसि (,, १६)

अनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः („ १७)

विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः („ १८)

गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा („ १९)

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां („ २०)

ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः („ २१)

इस प्रकार भगवान शिव के गुणों का, विहारादि का तथा सगुण ऐश्वर्य द्वारा अर्वांचीनपद लीलाविग्रहादि का वर्णन उनके परम मंगलस्वरूप का ज्वलन्त द्योतक है। बाहर से अमंगलमय से दीखने वाले भगवान शंकर मंगल की खान हैं। उनके चरणकमलों में कोटिशः प्रणाम।

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः ।
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्ज्यामृतमये
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान्
॥२६॥

संधिच्छेद : मनः प्रत्यक्+चित्ते स+विधम्+अवधाय+ आत्तमरुतः प्रहृष्यद्+रोमाणः प्रमद+सलिल+ उत्सङ्गित+दृशः यद्+आलोक्य+आह्लादम् ह्रद इव निमज्ज्य+अमृतमये दधति+अन्तः+ तत्त्वम् किम्+अपि यमिनः+तत्+किल भवान् ।

पदच्छेद : यमिनः आत्तमरुतः मनः प्रत्यक् चित्ते सविधम् अवधाय प्रहृष्यद् रोमाणः प्रमद सलिल उत्सङ्गित दृशः यत् किम् अपि तत्त्वम् आलोक्य अमृतमये ह्रद निमज्ज्य इव अन्तः आह्लादम् दधति तत् किल भवान् ।

अन्वयार्थ : **यमिनः**=यम नियम युक्त पुरुष, **आत्तमरुतः**= प्राणायाम द्वारा प्राण गति को वश करके,

मनः=मन को, **प्रत्यक्चित्ते**=इन्द्रियों के विषयों से हटाकर अन्तर्मुख भाव में धारणा-पूर्वक, **सविधम्**=अति समीपस्थ, **अवधाय**= सावधान रखकर, समाहित कर, **प्रहृष्यद्रोमाणः** =पुलकितांग अर्थात रोमांचित होते हुए देहों से युक्त, **प्रमदसलिलोत्सङ्जित दृशः**=हर्ष और आनन्द अश्रुओं से भरे नेत्रों वाले, नेत्रों को आनन्द के आंसुओं के संग में लाते हुए अर्थात् उनके नेत्र आनन्द के आंसुओं से भर जाते हैं, **यत् किम् अपि**=जिस किसी भी अथवा वाचामगोचर जिस, **तत्त्वम्**=तत्त्व को, सच्चिदानन्द रूप को, **आलोक्य**=देख कर, **अमृतमये**=अमृत भरे, **ह्रद**=सरोवर में, **निमज्ज्य इव**=मानो कि निमग्न होकर, **अन्तः** =आन्तरिक, **अह्लादम्**=परमानन्द को, **दधति** =धारण करते हैं, **तत्**=वही तत्त्व, **किल भवान**=निश्चय में श्रुति प्रसिद्ध आप हैं।

व्याख्या : यह श्लोक अत्यन्त सारगर्भित है। इसमें स्वानुभव सिद्ध प्राणायाम ध्यान समाधि आदि परिपक्व अष्टांग योगक्रिया द्वारा ब्रह्मसाक्षात्कार कर ब्रह्मानन्द का अतीव सुन्दर वर्णन है।

पचीसवें श्लोक के द्वारा सूक्ष्म शरीरधारी परमेश्वर के सगुण शरीर के अपूर्व महत्त्व का वर्णन किया गया है। उस से पूर्व बीसवें श्लोक द्वारा उनके निगुर्ण निराकार सच्चिदानन्द स्वरूप का वर्णन करके अब आगे सत्ताईसवें श्लोक द्वारा उस निर्गुण के ऐश्वर्य की विभूति के विस्तार का वर्णन किया जा रहा है।

वर्तमान श्लोक को लीजिए। योगी लोग प्रत्यक् चिते-अपरोक्ष साक्षात्कार में लगे अन्तर्मुख चित में ही अपने मन को, सविधम्-उसके अत्यन्त समीप में, एकाग्रभाव रखते हुए अर्थात् उसी में लगभग विलीन करते हुए "अवधाय"-तथा उसी के प्रति उसे सावधान (Attentive) रखते हुए, प्राण अपान की वृति को विलीन करते हुए प्रमदसलिल से—अर्थात् आनन्द के अश्रुओं से, उत्सञ्जित दृशः=नेत्रों को भरकर। उत्संगित शब्द व्याकरण की दृष्टि से बनता ही नहीं है। क्योंकि "संग" ऐसा कोई धातु नहीं। फिर यदि "उत्संग-गोद" इस शब्द से इसे जोडा जाए तो बड़ी क्लिष्ट कल्पना करनी पड़ेगी कि आनन्द के आंसुओं ने योगियों के नेत्रों को अपनी गोद बना लिया, अतः षञ्ज धातु से उत्+सञ्जित शब्द बनता है और अर्थ भी उसका ठीक लगता है।

कश्मीरी पाठ में भी उत्सञ्जित शब्द ही परम्परा से चला आ रहा है। अतः मैंने इस श्लोक में "उत्सञ्जित दृशः" को अधिक उपयुक्त मानकर उसी का प्रयोग किया है।

इस श्लोक से सम्बन्धित योग के विभिन्न अंगोपांग पर विस्तृत व्याख्या करना आवश्यक था परन्तु ऐसा करना इस पुस्तक में संभव नहीं। पाठकगण को परामर्श दिया जाता है कि वह इस संबंध में पातांजलयोगदर्शन और कश्मीर के शैव योग का अध्ययन करें।

अगले श्लोक द्वारा परमेश्वर की पारमेश्वरी विभूति का वर्णन किया जा रहा है।

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।
परिच्छिनामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह हि यत्त्वं न भवसि
॥२७॥

संधिच्छेद : त्वम्+अर्कः+त्वम् सोमः+त्वम्+असि पवनः +त्वम् हुतवहः+त्वम्+आपः+त्वम् व्योम त्वम्-उ+धरणिः+आत्मा त्वम्+इति च परिच्छिन्नाम्+एवम् त्वयि परिणता विभ्रतु गिरम् न विदमः+तत्+तत्त्वम् वयम्+इह हि यत्+त्वम् न भवसि ।

पदच्छेद : त्वम् अर्कः त्वम् सोमः त्वम् पवनः त्वम् हुतवहः त्वम् आपः त्वम् व्योम त्वम् धरणिः च त्वम्—उ-आत्मा असि इति एवम् परिणताः त्वयि परिच्छिन्नाम् गिरम् बिभ्रतु वयम् इह हि तत् तत्त्वम् न विद्मः यत् त्वम् न भवसि ।

अन्वयार्थ : त्वम् अर्कः=आप सूर्य हैं, **त्वम् सोमः**=आप चन्द्रमा हैं, **त्वम् पवनः**=आप वायु हैं, **त्वम् हुतवहः**=आप अग्नि हैं, **त्वम् आपः**=आप पानी हैं, **त्वम् व्योम**=आप आकाश हैं, **त्वम् धरणिः**=आप पृथ्वी हैं, और, **त्वम्-उ-आत्मा असि**=आप हो आत्मा हैं, **इति**=बस, **एवम्**= इस प्रकार अष्टधा मूर्तियों के प्रतिपादक, **परिणताः**=लकीर के फकीर विद्वान लोग, **त्वयि**=आपके बारे में, **परिच्छिन्नाम्**=मापे तुले अर्थ की बोधक, **गिरम**=वाणी को, **बिभ्रतु** =बोला करें, **वयम् इहहि**=परन्तु हम तो इस संसार में, **तत् तत्त्वम्**=उस तत्त्व को अथवा वस्तु को, **न विदम्ः**=जानते ही नहीं, **यत्**=जो, **त्वम् न भवसि**=आप नहीं हैं।

व्याख्या : हे अभीष्ट वर देने वाले शिव। विद्वान् लोग आपके विषय में परिमित अर्थ की बोधक वाणी द्वारा आपका प्रतिपादन करते हैं। उनका दृष्टिकोण संकुचित है और उन्होंने आप को सूर्य आदि आठ रूपों के साथ आठ 'त्वम' पद का वाक्य-अलंकार अर्थ में प्रयोग किया है। फिर "च" और "इति" पद से रूपों को सीमित किया है।

भगवान् शिव सर्वात्मक हैं उनको केवल आठ मूर्ति रूप में प्रतिपादित कर लकीर के फकीर विद्वान लोगों ने अपना ही परिहास किया है।

वह कौन सी वस्तु इस जगत में है जो भगवान शिव से भिन्न है। ऐसा होते हुए सर्वात्मकता को सूर्य आदि आठ विशेष रूपों में सीमित रखना स्पष्टतया व्यर्थ है।

"ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत"

(ईशावास्योपनिशद)

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म" (छांदोग्योपनिषद्)

"इदं सर्वं यदयमात्मा" (बृहदारण्यकोपनिषद्)

आगम प्रसिद्ध इन महावाक्यों से ईश्वर की सर्वात्मकता सिद्ध होती है। अष्ट मूर्तिरूप से भी भगवान शिव की उपासना समस्त रूप में की जाती है। सूर्य चन्द्रादि एक-एक रूप से जो शिव उपासना की जाती है वह व्यस्त रूप में की जाती है। माया के नानात्व के कारण ही नाम रूप में बट जाने से व्यस्त उपासना का प्रादुर्भाव हुआ। परन्तु

इसो नानात्व में एकत्व का भाव रखने से समस्त रूप में उपासना होती है। अखिल विश्व में शिव भावना करना विश्वमूर्ति उपासना है।

भगवान शिव को चन्द्रशेखर अथवा शशिशेखर कहते हैं। उन्होंने चन्द्रमा को अपनी शिखा में धारण कर रखा है। उनके तीन नेत्र सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि हैं। अतः सूर्य को चन्द्रमा आदि को शिव कहना युक्ति संगत नहीं है। जैसे शिवलिंग में शिव की भावना की जाती है, वैसे ही उक्त अष्ट मूर्तियों में शिव की भावना करना ही युक्ति युक्त है। इस प्रकार व्यस्त रूप से शिव की अष्टमूर्ति उपासना मानी जाएगी। भगवान शिव का एक नाम अष्टमूर्ति है। अतः अष्टमूर्ति रूप में एक ही शिव की उपासना समस्तरूप से शिवोपासना मानी जाती है।

जो उपासक व्यस्त रूप में भगवान शिव को उपासना करते हैं उन्हें चाहिए कि धीरे-धीरे अपनी उपासना को दृढ़ता से परिपक्व करें। समय आने पर उपाधियुक्त शिव को उपाधि का लय होगा और उपासक चैतन्यबोध का अनुभव करेगा। जो उपासक व्यस्त से समस्त रूप उपासना में प्रवेश नहीं करता तो उसका दृष्टिकोण संकुचित ही रह जाता है। इसी प्रकार विद्वान लोग, यद्यपि वह आगम

प्रसिद्ध महावाक्यों का ही आश्रय लेते हैं परन्तु अपने दृष्टिकोण को दुराग्रही अथवा दृढाग्रही ही बनाए रखते हैं तो वह भगवान शिव के बारे में संकुचित अर्थबोधक शब्द ही कहते रहेंगे जैसे इस श्लोक के पूर्वार्धभाग में देखने को मिलता है। वह तो लकीर के फकीर ही रहेंगे। परन्तु वास्तविकता तो यह है कि संसार में कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो सर्वात्मक शिव से भिन्न हो। विश्वात्मक भाव की उपासना से उपाधिबाध और प्रपञ्चबाध सर्वबाध में परिणत होता है और फिर उस शान्त अद्वितीय परमतत्त्व का वोध होगा।

त्रयीं तिस्त्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति ।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम्
॥२८॥

संधिच्छेद : त्रयीम् तिस्त्रः वृत्तीः+त्रिभुवनम्+अथ+उ त्रीन्+अपि सुरान्+अकाराद्यैः+वर्णैः+त्रिभिः +अभिदधत्+तीर्णविकृति तुरीयम् ते धाम ध्वनिभिः+अवरुन्धानम्+अणुभिः समस्तव्यस्तम् त्वाम् शरणद गृणाति+ओम+इति पदम् ।

पदच्छेद : शरणद ! अकाराद्यैः त्रिभिः वर्णैः व्यस्तं त्वां ओम इति पदम् गृणाति त्रयीम् तिस्त्रः वृत्तीः त्रिभुवनम् अथो त्रीन सुरान अपि अभिदधत् समस्तम् तीर्णविकृति ते तुरीयम् धाम अणुभिः ध्वनिभिः त्वाम् अवरुन्धानम् (गृणाति) ।

अन्वयार्थ : **शरणद**=आर्तों को अभय प्रदान कर शरण देने वाले भगवान, **अकाराद्यैः**=अकार, उकार

और मकार, **त्रिभिः वर्णैः**=इन तीन वर्णों में, **व्यस्तम्**=विभक्त हुए तेरे स्वरूप को, **ओम्**=ॐ, **इति पदम्**=यह पद, **गृणाति**=बताता है जैसे, **त्रयीम्**=ऋक, यजुः और सामरूप तीन वेदों को, **तिस्त्रः वृत्तीः**=तीन वृत्तियों-जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति—को, **त्रिभुवनम्**=भूः, भुवः, स्वः—अथवा पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्लोक—इन तीनों लोकों को, **अथो**=अथवा, **त्रीन**=तीन, **सुरान् अपि**=देवताओं को भी—अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर को, **अभिदधत्**=बतलाता हुआ, **समस्तम्**=समस्त रूप में यही ॐ पद, **तीर्णविकृति**=सर्वविकारातीत, **ते**=आपके, **तुरीयम् धाम**=तुरीय स्वरूप को, **अणुभिः**=सूक्ष्म, **ध्वनिभिः**=ध्वनियों द्वारा अर्थात् अ उ और म के द्वारा समस्त विश्व को घेरते हुए, **त्वाम् अवरुन्धानम्**=तुम्हारे तुरीय धाम तुरीय दशा में चमकते हुए तेज को अर्थात् चितप्रकाश को, **(गृणाति)**=जतलाता है, तो 'ओम् इति पदम्' ॐकार रूपी बीज मन्त्र आप के समस्त और व्यस्त दोनों स्वरूपों को जतलाता है।

व्याख्या : ॐ को वेदों में सर्वश्रेष्ठ पद माना गया है। भगवद्गीता में "प्रणवः सर्ववेदेषु" कहा गया है। इसी गीता का निर्देश है कि ॐ का उच्चारण करता हुआ शरीर त्यागने पर जीव परमगति को प्राप्त होता है।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥

इसी ॐ के बारे में गीताजी में लिखा है :

यदक्षरं वेद विदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये॥

कश्मीर की प्रसिद्ध योगिनी माता लल द्यद ने कहा है,
"अकुय ॐकार युस नाभि धरे
कुम्भय ब्रह्माण्डस सोम गरे।
अकुय मंत्र युस च्यतस करे
तस सास मंत्र क्या सना करे॥"

माण्डूक्योपनिषद् में ॐकार की सर्वरूपता का ऐसे आख्यान है :

"ओमित्त्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्-भविष्यदिति सर्वमोंकार एव। यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव।"

ॐ यह अक्षर ही सब रूप है, भूत, वर्तमान और भविष्य ऐसे तीन काल में वर्तमान वस्तु तो उसी का स्पष्ट व्याख्यान है। अतः यह सब ॐकार स्वरूप ही है। इसके अतिरिक्त त्रिकालातीत जो अन्य वस्तु है, वह भी ॐकार स्वरूप ही है।

पातंजलयोगदर्शन में भी कहा है:

'तस्य वाचकः प्रणवः'

उस ईश्वर का नाम ॐकार है।

कठोपनिषद् में नचिकेता को यमराज ने इसी ॐकार पद का उपदेश दिया।

मनुस्मृति का निर्देश है:

अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः।
वेदत्रयान्निरदुहद् भूर्भुवः स्वरितीति च॥

इस ॐ महामन्त्र का महत्त्व अनेक पुराणों, उपनिषदों, ब्राह्मण-ग्रन्थों, तन्त्रों, दर्शनों में यत्र तत्र मिलता है।

इस श्लोक में सर्वात्मक अद्वितीय शिव को ॐ की अवयवशक्ति और समुदायशक्ति द्वारा प्रतिपादित किया गया है। श्लोक के पूर्व दो पद में ॐ के व्यस्त रूप को दर्शाया गया है।

ओंकार जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति की तीन वृत्तियों को बतलाता हे। जाग्रत और स्वप्न स्वतः स्पष्ट हैं। सुषुप्ति भी सोये हुए पुरुष को इंगित करता है। इस काल में पुरुष न तो किसी विषय भोग की कामना करता है जैसे जाग्रत अवस्था में करता है, और न ही किसी स्वप्न को, जैसे स्वप्न काल में देखता है, देखता है। यह वृत्ति जाग्रत और स्वप्न से परे है। इस वृत्ति में केवल आनन्द का भोग किया जाता है। ईश्वर तो व्यस्त रूप में वृत्ति-अवच्छिन चैतन्य है। "अ" मात्रा से जाग्रत स्थान वाला, ':उ" मात्रा से स्वप्न स्थान वाला और "म" मात्रा से सुषुप्ति स्थान वाला ऐसा उस वृत्ति-अवच्छिन चैतन्य को समझना चाहिए।

ओमकार की तीन मात्राएं—"अ" कार से ब्रह्मा, "उ" कार से विष्णु और "म" कार से रुद्र को बतलाते हैं। सृष्टि, स्थिति और संहार यह उपलक्षण हैं।

ऊपर के कथन से स्पष्ट हुआ कि ओंकार के अकार से (i) विश्वनामक प्राणी, (ii) जाग्रत अवस्था और

(iii) ब्रह्मा ये तीन, उकार से (i) तैज़स प्राणी (ii) स्वप्नावस्था और (iii) विष्णु ये तीन और मकार से, (i) प्राज्ञ नामक प्राणी, (ii) सुषुप्ति अवस्था और (iii) रुद्र ये तीन के अर्थ रूप में प्रकट हुए। संक्षेप में व्यस्त रूप में ओंकार सारे प्रपञ्च को अकार, उकार, मकार सभी त्रिपुटियों के रूप में भगवान शिव का ही कथन करते हैं।

समस्तरूप में भगवान शिव सर्वविकाररहित शुद्ध और सर्व त्रिपुटियों से परे स्वयं प्रकाश हैं। उनके इस धाम का स्वरूप अखण्ड चैतन्यात्मक तुरीय है (तुरीयं तेधाम) इस धाम की किसी शब्द या पद से अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। यदि अभिव्यक्ति हो सकती है तो परिपूर्ण अखण्ड ॐ ध्वनि से होती है। उस ओंकार की एक विलक्षण शक्ति है जो अचिन्त्य है। गुरूपदेशानुसार चिरकाल तक प्रणव का जप करने से और अर्थ की भावना करने से सुक्ष्मातिसूक्ष्म ध्वनियों की अभिव्यक्ति से तुरीयधामाभिव्यक्ति हो जाता है (ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः)।

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सहमहां
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ।
अमुष्मिन्प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि
प्रियायास्मै धाम्ने प्रणिहितनमस्योऽस्मि भवते
॥२८॥

संधिच्छेद : भवः, शर्वः रुद्रः पशुपतिः+अथ+उग्रः सह+ महान्+तथा भीमः+ईशानौ+इति यत्+ अभिधान्+अष्टकम्+इदम् अमुष्मिन्+प्रति+ एकम् प्रविचरति देव श्रुतिः+अपि प्रियाय+ अस्मै धाम्ने प्रणिहित+नमस्यः+अस्मि भवते ।

पदच्छेद : देव, भवः शर्वः रुद्रः पशुपतिः अथ उग्र सह महान् तथा भीमः ईशानः इति यत् इदम् अभिधानाष्टकम् अमुष्मिन् प्रत्येकम् श्रुतिः अपि प्रविचरति अस्मै प्रियाय धाम्ने भवते प्रणिहित नमस्यः अस्मि ।

अन्वयार्थ : देव=हे भगवान । **भवः**=सृष्टि कर्त्ता, **शर्वः**= लोक संहारकारी, **रुद्रः**=दुष्टों को रुलाने वाले,

पशुपतिः=जीवों के पालन करने वाले, **अथ**= और, **उग्रः**=अभक्तों का और अज्ञान का नाश करने में प्रचण्ड, **सहमहान्**=महादेव, **तथा**= और, **भीमः**=कट्टर भयंकर अनुशासक, **ईशानः** =शासन करने वाला शिव, **इति**=इस प्रकार, **यत्**=जो, **इदम्**=यह, **अभिधानाष्टकम्**=आठ नाम हैं, **अमुष्मिन्**=इनमें से, **प्रत्येकम्**=हर एक नाम को, **श्रुतिः अपि**=वेद भी, **प्रविचरति**= प्रतिपादन करते हैं और मोक्ष का साधन बतलाते हैं, **अस्मै**—उस, **प्रियाय धाम्ने**=प्रिय धाम ज्योतिस्वरूप, **भवते**=आपको, **प्रणिहित** =शरीर, वानी और मन से, **नमस्योऽस्मि**= प्रणाम करता हूं।

व्याख्या : पूर्व श्लोक में निगम तथा आगम प्रसिद्ध ॐ द्वारा शिव का प्रतिपादन किया गया। इस श्लोक में भी जो आठ नाम शिव के कहे गए हैं यह केवल श्रुति-विख्यात ही नहीं अपितु स्मृति पुराण आदि भी इन का सावधानी के साथ वर्णन करते हैं। यह "श्रूतिरपि" और "प्रविचरति" पदों से स्पष्ट है।

रुद्र की उपासना में प्रयुक्त यजुः मन्त्रों के दो भाग

हैं—नमक और चमकं। नमकं में "नमः' शब्द का बार-बार प्रयोग हुआ है और चमकं में "चमें" का। इन को कश्मीर में "चमान वाक्य" से विशेषतयः अच्छी प्रकार जाना जाता है। यज्ञों में इन दो अध्यायों को परस्पर मिला कर के या पृथक-पृथक ही पाठ करते हुए रुद्र को सन्तुष्ट करने और उससे विविक्त काम्य पदार्थों के लाभ के लिए यज्ञ कुण्ड में आहुतियां दी जाती हैं। यह श्री रूद्र यजुर्वेद का सार माना जाता है और शैव सिद्धान्त में प्रतिपादित परमात्मा के विश्वात्मक और विश्वोत्तीर्ण रूपों की पुष्टि करता है। जिन आठ नामों का इस श्लोक में वर्णन आया है वे सभी 'नमकं' भाग में हैं। इनको मंत्रों के रूप में 'नमकं' भाग में प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए नमकं भाग के पांचवें अनुवाक में ऐसे आया है।

"नमो भवाय च रूद्राय च। नमः शर्वाय च पशुपतये च"

प्रणव (ॐ) का जप अधिकारी पुरुष ही कर सकते हैं। इसलिए सर्वसाधारण के लिए प्रणव समान ही ज्ञान तथा मोक्ष प्रदान करने वाले यह आठ नाम भी हैं। इन में से एक-एक का उपयुक्त रूप से मंत्र वना कर जप की विधि वताई गई है।

शिव का वाचक पद "पशुपति" बहुत विख्यात है।

इसके संदर्भ में शिवपुराण में वह आख्यान आता है जिसमें यह कहा गया है कि शिव का नाम पशुपति कैसे हुआ ।

त्रिपुरासुर के वध के लिए जब सब तैयारियां हो गई जिसका कुछ उल्लेख १८वें श्लोक में आया है तब भगवान रुद्र ने देवताओं की ओर देखकर कहा कि यदि वे देवतागण तथा अन्य प्राणियों के विषय में पृथक-पृथक पशुत्व की कल्पना कर उन पशुओं का आधिपत्य श्री रुद्र को प्रदान कर देंगे तभी वे उन असुरों का संहार करेंगे क्योंकि वे दैत्य-श्रेष्ठ (त्रिपुरासुर) तभी मारे जा सकते हैं अन्यथा उनका वध असंभव था। देवतागण शंकित हो उठे। श्री रुद्र ने उन्हें वचन दिया कि जो दिव्य पाशुपत व्रत का पालन करेगा वह पशुत्व से मुक्त हो जाएगा। इसी प्रकार पशुत्व से मुक्त होने के और कई उपाय बताए। देवताओं ने "ऐसा होगा" कहा। तभी से पशुत्वरूपी पाश से विमुक्त करने वाले रुद्र "पशुपति" हुए।

अज्ञान भेद दृष्ठि और कर्म के वंधन में वंधे हुए प्राणी सबके सब पशु कहलाते हैं। ब्रह्मा आदि देवगण भी भेद दृष्टि से अभिभूत हैं। अतः सभी पशु कोटि में गिने जाते हैं। जीव भाव में रहता हुआ जीव भी पशु श्रेणी में ही आता है क्योंकि वह तीनों ही पाशों से बंधा हुआ है। इन

सबका कल्याण करने वाला पालक ईश्वर या पशुपति है और वह जिन साधनों से इन्हें उत्पन्न करता है या बांध कर वश में रखता है वे "प्रकृति" या "प्राण" पाश कहे जाते हैं। पाशबद्ध हो पशु है। पाशबद्ध और शरणागत प्राणियों की रक्षा करने से "पशुपति" शंकर का अनुग्रह बोधक नाम विख्यात हुआ।

ये आठ नाम अति मधुर हैं। भगवान शिव के सहस्त्रों नाम हैं। कहा जाता है कि उनमें से यह आठ नाम उनको बहुत प्रिय हैं। इन आठ नामों को ब्रह्मा आदि देवताओं के कान सुनने के लिए सदा सावधानी से उत्सुक रहते हैं फिर तो दूसरों के विषय में क्या कहें। जिनका एक-एक नाम सर्वपुरुषार्थप्रद है, वे स्वयम् भगवान कैसे होंगे। इस विचार से भक्ति के आवेग में भक्त भगवान शिव को सप्रेम प्रणाम करता है।

वपुष्प्रादुर्भावादनुमितिमिदं जन्मनि पुरा
पुरारे नैवाहं क्वचिदपि भवन्तं प्रणतवान ।
नमन मुक्तः संप्रत्यतनुरहमग्रेऽप्यनतिमान् (भाक्)
महेश क्षन्तव्यं तदिदमपराधद्वयमपि ।।३०।।

संधिच्छेद : वपुः+प्रादुर्भावात्+अनुमितम्+इदम् जन्मनि पुरा पुरा+अरे न+एव+अहम् क्वचित्+अपि भवन्तम् प्रणतवान् नमन् मुक्तः संप्रति+अतनुः +अहम्+अग्रे+अपि+अनतिमान् महा+ईश क्षन्तव्यम् तत्+इदम्+अपराध+द्वयम्+अपि ।

पदच्छेद : पुरारे वपु : प्रादुर्भावात् इदम् अनुमितम् (यत्) पुरा जन्मनि अहम् क्वचित् अपि भवन्तम् नैव प्रणतवान् संप्रति नमन् अहम् मुक्तः अतनुः अग्रेऽपि अनतिमान् महेश तत् इदम् अपराध द्वयम् अपि क्षन्तव्यम् ।

अन्वयार्थ : **पुरारे**=हे त्रिपुरान्तक । **वपुः प्रादुर्भावात्**=इस वर्तमान शरीर के प्रादुर्भाव से अर्थात् इसे लेकर

के जन्म लेने से, **इदम्** = यह, **अनुमितम्** = मेरा अनुमान है कि, (**यत्**) = जो, **पुरा जन्मनि** = पूर्व जन्म में, **क्वचित अपि** = कहीं भी, **भवन्तम्** = आप के सामने, **नैव प्रणतवान्** = नतमस्तक नहीं हुआ, **संप्रति** = अब, **नमन्** = प्रणाम करता हुआ मैं, आपके सामने नतमस्तक होने से मैं, **मुक्तः** = मुक्त हो गया, **अतनुः** = अब बिना देह धारण किए, **अनतिमान्** = नतमस्तक नहीं हो सकता हूं। **महेश** = देवादि देव हे महादेव, **तत् इदम्** = उस इस, **अपराध द्वयम् अपि** = इन दोनों ही अपराधों के विषय में, **क्षन्तव्यम** = आपने क्षमा करनी चाहिए।

व्याख्या : यह श्लोक कश्मीर प्रचलित पाठ में ही विद्यमान् है, अन्यत्र नहीं।

इस श्लोक का तात्पर्य यही है कि भगवान् शिव को प्रणाम् करने वाला प्राणी पुनर्जन्म से मुक्त हो जाता है।

स्तोत्रकार भगवान से कहता है कि यदि उसने पिछले जन्म कभी भी उन्हें प्रणाम किया होता तो उसे वर्तमान जन्म लेना ही नहीं पड़ता। फिर यह भी कहता है कि इस समय वह शिवजी को प्रणाम कर रहा है। अतः आगे वह

जन्म लेगा ही नहीं, मुक्त हो जाएगा। तो न पिछले जन्म में उसने भगवान को प्रणाम किया और न ही देह त्याग के अनन्तर पुनः कभी प्रणाम कर पाएगा। इन दो अपराधों के विषय में शिवजी से क्षमा याचना कर रहा है।

इस संदर्भ में श्री कबीर दास जी के अन्त समय की घटना का उल्लेख करना आवश्यक है। जब उनका अन्त समय निकट आया तो उनकी आंखों से अश्रुपात हुआ। यह देखकर एकत्रित साधु संगति आश्चर्यान्वित हो गई। श्री कबीर दास जी ने इस घटना का समाधान यों कह कर किया कि अश्रु इसलिए नहीं बहे कि मैं शरीर छोड़ रहा हूँ। यह अश्रु इसलिए बहे कि इस देह त्याग के अनन्तर भगवत्-चर्चा युक्त सत्संग आगे प्राप्त न होगा। बिन्दु सागर में समाया तो व्यक्तित्व समाप्त हो गया फिर कौन पूज्य और कौन पुजारी।

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः ।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमतिसर्वाय च नमः ।।३१।।

संधिच्छेद : नमः नेदिष्ठाय प्रिय+दव दविष्ठाय च नमः
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः
नमः वर्षिष्ठाय त्रि+नयन यविष्ठाय च नमः
नमः सर्वस्मै ते तत्+इदम्+अति+सर्वाय च
नमः ।

पदच्छेद : प्रियदव नेदिष्ठाय दविष्ठाय च ते नमो नमः
स्मरहर क्षोदिष्ठाय महिष्ठाय च नमो नमः
त्रिनयन वर्षिष्ठाय यविष्ठाय च नमो नमः
सर्वस्मै ते (नमः) च तदिदम् अतिसर्वाय नमो
नमः ।

अन्वयार्थ : **प्रियदव**=हे निर्जन वन प्रिय भगवान !,
नेदिष्ठाय=अत्यन्त समीपवर्ती, **दविष्ठाय च**=
और दूर अति-दूरवर्ती, **ते**=आपको, **नमो नमः**

=बार-बार प्रणाम, **स्मरहर**=हे कामान्तक भगवान, **क्षोदिष्ठाय**=सूक्ष्मसे भी अतिसूक्ष्म, **महिष्ठाय च**=तथा महान से भी अति महान होते हुए आपको, **नमो नमः**=बार-बार प्रणाम, **त्रिनयन**=सूर्य चन्द्र वह्नि रूप तीन नेत्रधारी, **वर्षिष्ठाय**=अति वृद्ध, **यविष्ठाय च**=तथा अति युवा रूप आप को, **नमो नमः**=बार-बार प्रणाम, **सर्वस्मै**=सर्वस्वरूप, **ते**=आपको, **नमः**=नमस्कार हो, **च**=तथा, **तदिदम्**=तत् (परोक्ष) इदम् (अपरोक्ष), **अति सर्वाय**= तथा समस्त विश्व से अतिक्रान्त सर्वातिशायी सत्य (Transcendental truth) रूपी आपके प्रति मेरा यह, **नमो नमः**=बार-बार प्रणाम है।

व्याख्या : भगवान शिव एकान्त और निर्जन प्रेमी हैं। इसलिए उनका कैलाश में वास है। उनके तीर्थस्थल भी निर्गम पहाड़ों पर स्थित हैं जैसे अमरनाथ, केदारनाथ आदि। क्यों न हो, वे स्वात्माराम हैं। उनको प्रपंच से क्या काम। इन दूरस्थलों के प्रेमी होते हुए भी वह ज्ञानियों की दृष्टि से सर्वत्र विद्यमान होते हुए अत्यन्त समीपवर्ती हैं। हमारी आत्मा से निकटतम मनुष्य के लिए और कुछ भी नहीं। परन्तु

अज्ञानियों के लिए, जो अपने देह को ही सब कुछ समझते हैं, वे दूर से भी दूरवर्ती हैं। अज्ञानी तो करोड़ों जन्मों तक भी उसे दूर ही समझेंगे।

अपने भक्तों पर प्रसन्न होकर उनके अनुरोध पर भगवान शिव भारत के १२ स्थानों में ज्योतिर्लिंग के रूप में स्थित हैं। वे प्रपंच से परे भी हैं और प्रपंच में भी हैं।

यहां विरोधाभास अलंकार है। यदि ईश्वर निकटतम हैं तो दूर कैसे हुए और यदि दूर हैं तो निकट कैसे। भूतल के माप से दूरी और नज़दीकी स्पष्ट की गई। इसी प्रकार अध्यात्म दृष्टि से भी स्पष्ट किया गया। अज्ञानियों के लिए दूरातिदूर हैं और ज्ञानियों के लिए निकट से भी निकटतम। इस विरोधाभास से भगवान शिव की सर्व-व्यापकता बताई गई है और इसी को भक्त बार बार प्रणाम करता है।

भगवान शिव को स्मरहर कहते हैं। उन कामान्तक भगवान को बार-बार प्रणाम है। काम अथवा कामनाएं ही जन्म-बन्धन का कारण हैं। यदि इन कामनाओं का शिवकृपा से नाश हो जाए तो प्राणी भव-बंधन से मुक्त हो

जाए। इस संसार में जो भी कुछ है वह ईश्वर से आच्छादनीय है। यहां पर छोटे से छोटा जो भी है अथवा बड़े से बड़ा जो भी है वह परमात्मा ही है। वह सूक्ष्मतर है और महत से भी महत्तर है।

"अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम"। "कठोपनिषद्"

यह आत्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर और महान से भी महत्तर इस जीव की हृदय गुफा में स्थित है। सूक्ष्म होते हुए भी उस जैसा महान कोई नहीं। उसकी महिमा अनन्त है।

त्रिनयन शिव वृद्धतम हैं और साथ में नवीनतम भी। वह तो कालातीत हैं। जब हम अपने पूर्वजों की शाखा के आरम्भ में पहुंचते हैं तो ब्रह्माजी हमारे सबसे वृद्ध हैं। परन्तु उनके भी जनक भगवान शिव हैं। इस प्रकार वह वृद्धतम हैं। इसी प्रकार वह सदा सद्योजात हैं क्योंकि काल भी उसी शिव में कल्पित है।

देश, देह और काल से अपरिच्छिन भगवान को पहले तीन पाद में दर्शाया। अब कहते हैं कि जो कुछ भी कहीं

है वह शिव ही है। समस्त विश्व के रूप में शिव ही प्रकट होता रहता है। परन्तु साथ ही वह इस विश्व से सदा उत्तीर्ण एकमात्र शुद्ध चित्तस्वरूप ही हैं। इन सभी रूपों में शिवजी को भक्त इस श्लोक द्वारा प्रणाम कर रहा है।

बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ।
जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ।।३२।।

संधिच्छेद : बहल्+रजसे विश्व+उत्पत्तौ भवाय नमः नमः
प्रबल्+तमसे तत्+संहारे हराय नमः नमः
जन+सुख+कृते सत्त्व+उद्रिक्तौ मृडाय नमःनमः
प्रमहसि पदे निस्+त्रै+गुण्ये शिवाय नमः नमः

पदच्छेद : विश्वोत्पत्तौ बहलरजसे भवाय नमः नमः
तत्संहारे प्रबलतमसे हराय नमः नमः
जन्सुखकृते सत्वोद्रिक्तौ मृडाय नमः नमः
निस्त्रैगुण्ये प्रमहसि पदे शिवाय नमः नमः

अन्वयार्थ : **विश्वोत्पत्तौ**=विश्व की उत्पति के कार्य में, **बहलरजसे**=रजोगुण प्रधान, **भवाय**=सृष्टि-कारक नाम से प्रसिद्ध भवरूप आपको, **नमः नमः**=बार-बार प्रणाम हो, **तत्संहारे**=उस विश्व के संहार में, **प्रबलतमसे**=तमोगुण

प्रधान, **हराय**=रुद्रमूर्ति हर रूप आपको, **नमः नमः**=बार बार प्रणाम, **जनसुखकृते**=जीवों को सुख देने के लिए, **सत्वोद्रिक्तौ**=सत्त्वगुण प्रधान, **मृडाय**=मृड रूप आपको, **नमः नमः**= बार बार प्रणाम, **निस्त्रैगुण्ये**=त्रिगुणातीत अवस्था के रूप में, **प्रमहसि**=सर्वोत्तम प्रकाश रूप, **पदे**=स्थिति में नित्य-मुक्त-स्वरूप आप, **शिवाय**=शिव को, नमः नमः=बार बार प्रणाम ।

व्याख्या : इस स्तुति का यह उपसंहारक श्लोक है । अब इस स्तुति को सम्पूर्ण कर इस में सर्वार्थ को संक्षेप में कह-कर नमस्कारमयी स्तुति करते हैं ।

इस स्थूल प्रपञ्च की सृष्टि स्थिति और संहार क्रम से ब्रह्मा विष्णु और रुद्र करते हैं । परन्तु इससे ऊपर वाली सूक्ष्म तथा सूक्ष्मतर सृष्टि, स्थिति और संहार को स्वयं परमेश्वर शिव ही करते हैं । उस स्तर पर वे रजोगुण को प्रधानतया काम में लाते हुए भव कहलाते हैं । भव का अर्थ होता है उत्पत्ति अर्थात् उत्पत्ति करने वाला । सत्त्व गुण को प्रधानतया काम में लाते हुए उस सूक्ष्मतर प्रबन्ध को सुख-पूर्वक ठहराते हुए वे मृड कहलाते हैं । मृड का अर्थ होता

है सुखदेवा अर्थात् सुख देने वाला । उस सूक्ष्म प्रपञ्च को संहार करते हुए वे तमोगुण को प्रधानतया काम में लाते हैं । उस स्थिति में उन्हें हर कहा जाता है । हर का अर्थ होता है संहार करना । वैसे तो संहार करने वाले अधिकारी को भी हर कहा जाता है । इन तीनों क्रियाओं से परे अपने शुद्ध चिन्मय स्वरूप में ठहरते हुए परमेश्वर को शिव कहते हैं । वह स्थिति तीन गुणों से परे शुद्ध चित् प्रकाशमयी स्थिति है । वह प्रकाश आनन्दघन है । अतः उस स्थिति में उन्हें शिव कहा जाता है । शिव का अर्थ होता है मंगल, कल्याण और सर्वोत्तम कल्याण परिपूर्ण चिदानन्दमयी शिव की अवस्था ही है ।

कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदं
क्व च तव गुणसीमोल्लंघिनी शश्वदृद्धिः ।
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधाद्-
वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥३३॥

संधिच्छेद : कृशपरिणति चेतः क्लेश + वश्यम् क्व च + इदम् क्व च तव गुण + सीमा + उल्लंघिनी शश्वद् + ऋद्धिः इति चकितम् + अमन्दी + कृत्य माम् भक्तिः + आधात् + वरद चरणयोः + ते वाक्य + पुष्प + उपहारम् ।

पदच्छेद : वरद कृशपरिणति च क्लेशवश्यम् इदम् चेतः क्व गुणसीमोल्लंघिनी तव शश्वद् ऋद्धिः क्व इति चकितं माम् (ते) भक्तिः अमन्दीकृत्य वाक्यपुष्पोपहारम् ते चरणयोः आधात् ।

अन्वयार्थ : **वरद**=वांछित वरदाता, **कृशपरिणति**=अल्प परिपाक वाला, बहुत थोड़ा ज्ञान वाला, **च**= और, **क्लेशवश्यम्**=अविद्या आदि पांच क्लेशों

के वश में रहने वाला, **इदम्**=यह, **चेतः**=चित्त, **क्व**=कहां, **च**=और, **गुणसीमोल्लंघिनी**=गुणों की सीमा को पार करने वाली असीम, **तव शश्वद्**=आपकी शाश्वत सतत प्रवाहिणी, **ऋद्धिः**=महिमा, **क्व**=कहां, **इति**=इस प्रकार, **चकितं**=चकित हुए, **माम्**=मुझको,(**ते**) **भक्तिः** =आपकी भक्ति ने, **अमन्दीकृत्य**=बलात् तीव्र बुद्धि वाला बनाकर, **वाक्यपुष्पोपहारम्**=श्री महिम्न-स्तोत्र वाक्यरूपी पुष्पों का उपहार, **ते चरणयोः**=आपके चरण कमलों में मैं ने, **आधात्**=अर्पित कर दिया, चढ़ाया ।

व्याख्या : इस महिम्नस्तोत्र के प्रथम श्लोक का इस श्लोक के साथ सीधा संबंध जुड़ा हुआ है । दोनों में मनुष्य की परिमित बुद्धि और भगवान शिव की अनन्त महिमा का वर्णन है । अतः यह श्लोक उपसंहार रूप में है ।

भक्त अपने चित्त की स्थिति वर्णन करता है । अल्प-ज्ञान और अल्प बुद्धि । इसके ऊपर अविद्या, अस्मिता, राग द्वेष और अभिनिवेशरूपी पांच क्लेशों का प्रभाव । इन दोषों से निवृत होना आसान नहीं । यह बहुत कष्ट देने वाले हैं । अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश विशेष-

कर दुखदायी हैं। इन के कारण ही बुद्धि के परिपाक में अल्पता आती है।

अविद्या या अज्ञान से मनुष्य का ज्ञान आवृत अथवा ढका हुआ है। इसी अज्ञान के कारण वह असत् को सत्, अनित्य को नित्य, दु:खरूपी संसार को सुख मानता है और अन्ततोगत: व्यापक क्लेश को प्राप्त होता है। इसी प्रकार अस्मिता अर्थात् अहंकार भी दु:खदायी है। अहंकार ही अल्पता का मूल कारण है। यही पाप कर्म करवाता है। आचरण भ्रष्ट करता है, झूठी प्रतिष्ठा की भावना उत्पन्न कराता है। विवेक को नष्ट करता है। अहंकारी मनुष्य अपने को ईश्वर से कम नहीं मानता और घमण्डी होता है। उसकी परिधि मैं और मेरे में ही सीमित रहती है। उसकी आत्मा व्यापकता से च्युत रहती है और इसी कारण क्लेश की प्राप्ति होती है। जहां ईश्वर अपने भक्तों पर कृपा करना चाहते हैं तो वहां उनका गर्व भंग कर देते हैं। इस संबंध में नारद काम-जय-अभिमान, अर्जुन का भक्ति-अभिमान, भीम का शक्ति-अभिमान, हनुमान का राम-कार्यकर्त्ता का अभिमान, गुरुड़ का गति-अभिमान, सुदर्शन चक्र का शक्ति का अभिमान इत्यादि भंग करने के कितने ही प्रसंग मिलते हैं।

राग तो दुःखदायी है ही। विषय वासना कभी तृप्त नहीं होती। आदि और अन्त में भी दुःखदायी हैं। राजा भर्तृहरि कहते हैं "भोगान न भुक्ता वयमेव भुक्ताः" मैंने विषयों का क्या उपभोग किया उल्टा उन्होंने ही मुझे खा लिया। राजा जनक को ऋषि अष्टावक्रजी इस बारे में यों उपदेश करते हैं—"विषयान् विषवत् त्यज"। विषयों को विष की तरह त्याग दे। आद्यशंकराचार्य ने महासमाधि में जाने से पहले अपने शिष्यों के विनयपूर्वक आग्रह पर पांच श्लोकों में गागर में सागर बरते हुए संक्षिप्त में शिक्षा दी। उसके पहले श्लोक में आता है "भवसुखे दोषोऽनु-सन्धीयताम्"। इस संसार के तथाकथित सुखों में दोषों की खोज करो। वे सब दोषयुक्त हैं और क्लेशकारी हैं।

द्वेष जैसी दाहक अग्नि और कौन हो सकती है, यह सर्वपापकारी है और क्लेश में डालती है।

अभिनिवेश अथवा असत्यविश्वास, जैसे जीव का शरीर के साथ बहुत लगाव रहता है। परन्तु जो पैदा हुआ है उसने मरना ही है—"जातस्यहि ध्रुवो मृत्युः"। यह निश्चित होते हुए भी इस शरीर में बहुत आसक्ति रहती है। साधना पथ में काफी प्रगति करने पर भी शरीर के प्रति अनुरक्ति बनी रहती है। यह अनुरक्ति विज्ञान

उत्पत्ति में बाधक है अतः क्लेशयुक्त है। इस क्लेशवशीभूत चित में सम्यक् ज्ञान की उत्पत्ति की कैसे आशा की जा सकती है। इस तत्त्व को पतंजलि के योगदर्शन में अच्छी प्रकार समझाया गया है। क्लेशनिवृत्ति के बिना आत्मावरण की निवृत्ति कदापि नहीं हो सकती। आवरण के भंग होने पर ही परमानन्द स्वयंप्रकाश शिव तत्त्व प्रकाशित होता हैं।

उपर्युक्त क्लेशों को अत्यन्त प्रयत्न द्वारा ही वश में किया जा सकता है। कहां एक ओर क्लेशयुक्तचित्त के कारण बुद्धि दुर्बल और गुणों की सीमा और संख्या परिणाम को उल्लंघन करती हुई ईश्वर की शाश्वत महिमा और विभूति। यह तो एक असंभावना है जो कि भक्त के भय का कारण है।

यह स्थिति होते हुए भी भक्त स्तुति करने को प्रेरित हो जाता है। यह सारी प्रेरणा उसको शिवभक्ति के फलस्वरूप ही प्राप्त हुई। जो चिन्ता और भय भक्त के हृदय में थे वह सब छूट गए। अब वह उचित-अनुचित की चिन्ता किए बिना ही स्तुति करता है।

पदे त्ववीचीने पतति न मनः कस्य न वचः

शिवमहिम्नस्तोत्र वाक्यों का पुष्प उपहार है जो भक्ति से प्रेरित होकर भक्त ने अभीष्ट वर देने वाले भगवान शिव के चरणकमलों में अर्पित किया ।

जैसे पुष्प भौंरों को अपना मकरन्द देते हैं और अन्य भी दूर से ही इन पुष्पों की सुगन्धि से मुदित होते हैं वैसे ही यह स्तुतिरूप वाक्यपुष्प भक्ति के रसिकों के लिए भगवतमहिमा वर्णन के अमृतरस का स्रोत है और अन्य भी इस के श्रवण मात्र से विशेष सुख की प्राप्ति करेंगे ।

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ।।३४।।

संधिच्छेद : असित + गिरि + समम् स्यात् + कज्जलम् सिन्धु + पात्रे सुर + तरु + वर + शाखा लेखनी पत्रम् + उर्वी लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्व + कालम्, तद् + अपि तव गुणानाम् + ईश पारम् न याति ।

पदच्छेद : ईश यदि सिन्धुपात्रे असितगिरिसमं कज्जलं स्यात् सुरतरुवरशाखा लेखनी उर्वी पत्रम् गृहीत्वा शारदा सर्वकालं लिखति तदपि तव गुणानाम् पारम न याति ।

अन्वयार्थ : **ईश**=हे महेश्वर, **यदि**=अगर, **सिन्धुपात्रे**= समुद्ररूपी दवात में, **असितगिरिसमं**=नीलांजन पर्वत के समान, **कज्जलं**=स्याही, **स्यात्**= होवे, **सुरतरुवरशाखा**=कल्पवृक्ष की शाखा,

लेखनी=कलम हो, **उर्वी**=पृथ्वी, **पत्रम्**= कागज़ हो, **गृहीत्वा**=इन सबको लेकर, **शारदा**=सरस्वती, **सर्वकालं**=अनन्तकाल तक, **लिखति**=लिखती रहे, **तदपि**=तब भी, **तव**= आपके, **गुणानाम्**=गुणों के, **पारं**=पार को **न याति**=नहीं पा सकती है ।

व्याख्या : श्री शिवमहिम्नस्तोत्र के ३२ ही श्लोक माने जाते हैं । कश्मीर में १-३२ श्लोकों तक ही मुख्य स्तोत्र पढ़ने की प्रथा है । कश्मीर बाहर अन्य प्रदेशों में २३वें और ३०वें श्लोकों को स्त्रोत्र में सम्मिलित नहीं किया गया है । अतः शेष ३२ (१ से २२, २४ से २९ और ३१ से ३४) श्लोकों के पढ़ने की ही प्रथा प्रचलित है । इस प्रकार महिम्नस्तोत्र को इस श्लोक के साथ ही सम्पूर्ण किया जाता है ।

इस श्लोक में भगवान शिव के सगुण महिमा के अखण्ड तत्त्व को लक्षित किया गया है । निर्गुण शिव मन और वाणी का विषय तो है ही नहीं तथापि सगुण अर्वाचीन पद में भी ब्रह्मा और देवताओं के गुरु वृहस्पति भी उस शिव की महिमा बखान करने में अशक्त है । इसलिए अब विद्या की अधिष्ठात्री सरस्वती भगवती की कल्पना की

गई कि संभवतः वह भगवान शिव की महिमा का पार पाने में समर्थ हो। यह कल्पना भी सार्थक न निकली। भगवती शारदा भी उनके गुणों को जानने और लिखने में पार नहीं पा सकती हैं चाहे वह असंभावित उपकरण और सामग्री लेकर भी अनन्त काल तक इस प्रयत्न में संलग्न रहे। यहां पृथ्वी, समुद्र इत्यादि सांकेतिक हैं क्योंकि यह परिमित हैं तो दूसरी ओर अनन्त काल तक लिखने की कल्पना की गई है। अतः अनन्त पृथ्वी, समुद्र, नीलाचल इत्यादि की भी कल्पना की जा सकती है ताकि अनन्त काल तक जितना भी इन साधनों की भगवती शारदा को आवश्यकता पड़े प्राप्त होते रहें। इससे यह सिद्ध होता है कि भगवान शिव की अनन्त महिमा को न तो कल्पना में सम्पूर्ण रूपेण उतारा जा सकता है न ही लेख बद्ध किया जा सकता है। यह ब्रह्मा, बृहस्पति, भगवती शारदा आदि के लिए यदि असंभव है तो फिर हमारे जैसे, अल्पज्ञ, कृशपरिणति क्लेशवशीभूत चित्तवालों की क्या गिनती है।

इति श्री शिवमहिम्नस्तोत्रं सम्पूर्णम्

(ॐ सत्यम् शिवम् सुन्दरम्)

परिशिष्ट

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले-
ग्रथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ।
सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ।।३५।।

संधिच्छेद : असुर+सुर+मुनि+इन्द्रैः+अर्चितस्य+इन्दु+मौलेः+ग्रथित+गुण+महिम्नो निर्गुणस्य+ईश्वरस्य सकल+गुण+वरिष्ठः पुष्प+दन्त+अभिधानः रुचिरम्+अ+लघु+वृत्तैः स्तोत्रम्+एतत्+चकार ।

पदच्छेद : असुरसुरमुनीन्द्रैः अर्चितस्य ग्रथितगुणमहिम्नः निर्गुणस्य ईश्वरस्य इन्दुमौलेः एतत् रुचिरम् स्तोत्रम् सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानः अलघुवृत्तैः चकार ।

अन्वयार्थ : **असुर**=दानव, **सुर**=देव, **मुनीन्द्रैः**=वरिष्ठ मुनियों द्वारा, **अर्चितस्य**=पूजित, **ग्रथित+गुण+महिम्नः**=शास्त्रों में गुम्फित गुणों की महिमा युक्त, **निर्गुणस्य ईश्वरस्य**=परन्तु वास्तव में निर्गुण ईश्वर, **इन्दुमौलेः**=भगवान चन्द्रशेखर के, **एतत्**=इस, **रुचिरम् स्तोत्रम्**=सुन्दर मनोहर महिम्नस्तोत्र को, **सकलगुणवरिष्ठः**= सारे गुणों में सर्वोत्तम, **पुष्पदन्ताभिधानः**=श्री पुष्पदन्त नाम के राजा ने, **अलघुवृत्तैः**=बड़े-बड़े छन्दों में, **चकार**= बनाया ।

टिप्पणी : यहां पर श्री महिम्नस्तोत्र के रचयिता का उल्लेख आया है । श्री पुष्पदन्तजी गन्धर्वों में श्रेष्ठ थे अथवा गन्धर्वों के राजा थे । प्रायः पाठ में "सकलगुणवरिष्ठः" आया है जिसका अर्थ है सारे गुणों से महत्त्वप्राप्त । यह उपयुक्त है क्योंकि श्री शिव महिम्नस्तोत्र की अनुपम रचना कोई अलौकिक बुद्धि और गुणों से युक्त भक्त ही कर सकता था । परन्तु कहीं पाठान्तर "सकलगण वरिष्ठः" ऐसा आता है । उसका अर्थ समस्त रुद्रगणों में श्रेष्ठ । परन्तु गन्धर्वों का

दर्जा रुद्रगणों से बहुत नीचे का है। यदि पुष्पदन्त को रुद्रगणों में गिना जाए तो वह गन्धर्व नहीं। गन्धर्वों से कई एक सीडियाँ ऊपर का प्राणी गण हो सकता है। इसलिए "सकलगुणवरिष्ठः" यही पाठ ठीक लगता है।

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेत-
त्पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान्यः ।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथात्र
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान्कीर्तिमांश्च ।।३६।।

संधिच्छेद : अहः+अहः+अनवद्यम् धूः+जटेः स्तोत्रम्+एतद्+पठति परम्+भक्त्याः शुद्ध+चित्तः पुमान्यः स भवति शिव+लोके रुद्र+तुल्यः+तथा+अत्र प्रचुरतर+धन+आयुः पुत्रवान्+कीर्तिमान्+च ।

पदच्छेद : यः पुमान् शुद्धचित्तः परमभक्त्या धूर्जटेः अनवद्यम् एतत् स्तोत्रम् अहरहः पठति सः अत्र प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् च कीर्तिमान् भवति शिवलोके च रूद्रतुल्यः (भवति)

अन्वयार्थ : **यः पुमान्**=जो मनुष्य, **शुद्धचित्तः**=शुद्धचित्त होकर, **परमभक्त्या**=परम भक्ति से, **धूर्जटेः**=विशाल जटाधारी शंकर के, **अनवद्यम्**=दोष-

रहित पवित्र, **एतत्**=इस, **स्तोत्रम्**=स्तोत्र को, **अहरहः**=प्रतिदिन, **पठति**=पढ़ता है, **सः**= वह, **अत्र**=इस संसार में जीवन काल में, **प्रचुरतरधनायुः**=महान धन युक्त और दीर्घायु, **पुत्रवान्**=पुत्रों वाला, च **कीर्तिमान्**= और यश वाला, **भवति**=होता है, **शिवलोके च**= शरीर त्याग करने पर शिव लोक में जाता है, **रुद्रतुल्यः भवति**=और शिव सदृश्य अथवा शिव सारूप्य मुक्ति को प्राप्त होता है।

टिप्पणी : अब इस स्तोत्र के पाठ की विधि और फल प्राप्ति का वर्णन आता है। पाठ प्रतिदिन नियमित रूप से परमभक्तियुक्त तथा शुद्धचित्त से करना है। तब ही पूर्ण फल की प्राप्ति हो सकती है।

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ।
अघोरान्नापरो मंत्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्
॥३७॥

संधिच्छेद : महेशात् + न + अपरः देवः महिम्नः न + अपरा स्तुतिः अघोरात् + न + अपरः मंत्रः न + अस्ति तत्त्वं गुरो : परम् ।

पदच्छेद : महेशात् अपरः देवः न महिम्नः अपरा स्तुतिः न अघोरात् अपरः मंत्रः न गुरोः परम् तत्त्वं न अस्ति ।

अन्वयार्थ : **महेशात्** = महादेव से बढ़कर, **अपरः देवः न** = दूसरा कोई देव नहीं, **महिम्नः** = श्री शिवमहिम्न-स्तोत्र से बढ़कर, **अपरा स्तुतिः न** = दूसरी कोई स्तुति नहीं, **अघोरात्** = अघोर मंत्र से बढ़कर, **अपरः मंत्रः न** = कोई दूसरा मंत्र नहीं, **गुरोः परम्** = गुरु से बढ़कर, **तत्त्वं न अस्ति** = तत्त्व नहीं है ।

टिप्पणी : "अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्य:" इत्यादि मंत्र को अघोर मंत्र कहते हैं। शैवी मन्त्रोपासना में इसी मंत्र की महिमा सबसे अधिक मानी गई है। यह एक आगमिक मंत्र है और इसे नारयणीय उपनिषद् में भी दिया गया है। अतः यहां कहा गया है कि इस अघोर मंत्र से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं। इसी प्रकार सद्गुरु को भी समझना चाहिए। ईश्वरानुग्रह श्री सद्गुरु के माध्यम से ही अवतीर्ण होता है। अतः श्री सद्गुरु और शिव एक ही हैं (गुरुर्देवो महेश्वर:)जिस ने सदगुरु के तत्त्व को जान लिया उसने श्री शिव तत्त्व को जान लिया। (गुरुः साक्षात् परब्रह्म)।

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाः क्रियाः ।
महिम्नस्तवपाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्
॥३८॥

संधिच्छेद : दीक्षा दानम् तपः+तीर्थम् ज्ञानम् याग+आदिकाः क्रियाः महिम्न+स्तव+पाठस्य कलाम् न+अर्हन्ति षोडशीम् ।

पदच्छेद : दीक्षा दानम् तपस्तीर्थम् ज्ञानम् यागादिकाः क्रियाः महिम्नस्तव पाठस्य षोडशीम् कलाम् न अर्हन्ति ।

अन्वयार्थ : **दीक्षा**=दीक्षा लेना, **दानम्**=दान करना, **तपस्तीर्थम्**=तप करना और तीर्थाटन करना, **ज्ञानम्**=शास्त्रों को जानना, **यागादिकाः क्रियाः**=यज्ञ आदि सकल क्रियाएं, **महिम्न-स्तवपाठस्य**=शिव महिम्नस्तोत्र के पाठ की, **षोडशीम् कलाम्**=सोलहवीं कला के, **न अर्हन्ति**=समान नहीं हैं ।

टिप्पणी : यहां श्री शिवमहिम्नतोत्र के पाठ की उत्कृष्टता का वर्णन किया गया है ।

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शिशुशशिधरमौलेर्देवदेवस्य दासः ।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषा-
त्स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥३८॥

संधिच्छेद : कुसुम+दशन+नामा सर्व+गन्धर्व+राजः शिशु+शशि+धर+मौलेः+देव+देवस्य दासः स खलु निज+महिम्नः भ्रष्ट एव+अस्य रोषात्+स्तवनम्+इदम्+अकार्षीद्+दिव्य+दिव्यम् महिम्नः ।

पदच्छेद : शिशुशशिधरमौले : देवदेवस्य दासः कुसुमदशन-नामा सर्वगन्धर्वराजः अस्य रोषात् एव निजम-हिम्नः भ्रष्ट सः खलु महिम्नः दिव्यदिव्यम् इदम् स्तवनम् अकार्षीत् ।

अन्वयार्थ : **शिशुशशिधरमौलेः**=बालचन्द्र को जटामुकुट में धारण करने वाले, **देवदेवस्य**=देवों के देव महादेव का, **दासः**=दास, भक्त, **कुसुमदशन-नामा**=पुष्पदन्त नाम वाला, **सर्वगन्धर्वराजः**

=सारे गंधर्वों का राजा, **अस्य**=इसी महादेव के, **रोषात् एव**=क्रोध से ही, **निजमहिम्नः**= अपनी महिमा से, अर्थात अपने महिमामय पद से, **भ्रष्टः**=गिर गया था, **सः खलु**=उसी पुष्पदन्त ने विनम्र होकर, **महिम्नः**=भगवान शिव की महिमा के, **दिव्यदिव्यम्**=अतीव दिव्य और सुन्दर, **इदम्**=इस **स्तवनम्**=स्तोत्र को, **अकार्षीत्**=बनाया ।

टिप्पणी : इस स्तोत्र रूपी कार्य को करने का कारण इस श्लोक में बताया गया है । इसका विस्तारपूर्वक वर्णन प्रस्तावना में देखें ।

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
पठति यदि मनुष्यः प्रांजलिर्नान्यचेताः ।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ।।४०।।

संधिच्छेद : सुर+वर+मुनि+पूज्यम् स्वर्ग+मोक्षैक+हेतुम् पठति यदि मनुष्य : प्रांजलिः+न+अन्य+चेता। व्रजति शिव+समीपम् किन्नरैः स्तूयमानः स्तवनम् इदम्+अमोघम् पुष्प+दन्त+ प्रणीतम् ।

पदच्छेद : सुरवरमुनिपूज्यम् स्वर्गमोक्षैकहेतुम् पुष्पदन्तप्रणीतम् अमोघम् इदम् स्तवनम् यदि मनुष्यः न अन्य-चेताः प्रांजलिः पठति किन्नरैः स्तूयमानः शिवसमीपम् व्रजति ।

अन्वयार्थ : **सुरवरमुनि**=बड़े-बड़े देवता और मुनियों द्वारा, **पूज्यम्**=पूजनीय और प्रशंसनीय, **स्वर्गमोक्षैक-हेतुम्**=एक साथ स्वर्ग तथा मोक्ष प्राप्त कराने का साधन, **पुष्पदन्तप्रणीतम्**=श्री पुष्प-

दन्ताचार्य जी द्वारा रचित, **अमोघम्**=अचूक फल देने वाला, **इदम्** **स्तवनम्**=इस श्रीशिवमहिम्नस्तोत्र को, **यदि मनुष्यः**=अगर मनुष्य, **न अन्यचेता**=अन्य किसी बात में चित्त को न लगाकर अथवा अनन्यचित् से समाहित होकर, **प्रांजलिः**=हाथ जोडकर, **पठति**=पढ़ता है तो वह, **किन्नरैः**=किन्नरों द्वारा, **स्तूयमानः**=पूजित होकर, **शिवसमीपम्** शिव सामीप्य को, **व्रजति**=प्राप्त होता है ।

टिप्पणी : यह भी श्रीशिवमहिम्नस्तोत्र की महिमा और फल का ही वर्णन है ।

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्वभाषितम् ।
अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम् ॥४१॥

संधिच्छेद : आ+समाप्तम्+इदम् स्तोत्रम् पुण्यम् गन्धर्व+भाषितम् अन्+औपम्यम् मनोहारि शिवम्+ईश्वर+वर्णनम् ।

पदच्छेद : गन्धर्वभाषितम् इदं पुण्यं स्तोत्रं आसमाप्तं अनौपम्यं मनोहारि शिवम् ईश्वरवर्णनम् ।

अन्वयार्थ : **गन्धर्वभाषितम्**=श्री पुष्पदन्त गन्धर्व द्वारा कहा गया, **इदं**=यह, **पुण्यं**=पवित्र, **स्तोत्रम्**=स्तुति, **आसमाप्तं**=प्रारंभ से समाप्ति पर्यन्त, **अनौपम्यं**=अनुपम्, **मनोहारि**=मनोहर, **शिवम्**=कल्याणमय, **ईश्वरवर्णनम्**=भगवान शिव की महिमा को वर्णन करता रहेगा ।

टिप्पणी : यहां भी श्री शिवमहिम्नस्तोत्र के उत्कृष्ट होने का वर्णन आया है ।

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छंकरपादयोः
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः ।।४२।।

संधिच्छेद : इति+एषा वाक्+मयी पूजा श्रीमत्+शंकर+पादयोः अर्पिता तेन देव+ईशः प्रीयताम् मे सदाशिवः ।

पदच्छेद : इति एषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छंकरपादयोः अर्पिता तेन देवेशः सदाशिवः मे प्रीयताम् ।

अन्वयार्थ : **इति**=इस प्रकार, **एषा**=यह, **वाङ्मयी**=शब्दमयी, **पूजा**=पूजा, **श्रीमच्छंकर**=श्री शंकर भगवान के, **पादयोः**=चरणकमलों में, **अर्पिता**=अर्पण की गई, **तेन**=इस प्रकार समर्पण करने से, **देवेशः**=देवादिदेव, **सदाशिवः**=सदाशिव महादेव, **मे प्रीयताम्**=मुझ पर प्रसन्न हों ।

टिप्पणी : हमारी सभ्यता की परम्परा के अनुसार इस स्तोत्र को शिवार्पण किया गया ।

श्रीपुष्पदन्तमुखपंकजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्बिषहरेण हरप्रियेन ।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥४३॥

संधिच्छेद : श्री + पुष्प + दन्त + मुख + पंकज + निर्गतेन स्तोत्रेण किल्बिष + हरेण हर + प्रियेण कण्ठ + स्थितेन पठितेन सम् + आहितेन सु + प्रीणितः भवति भूत + पतिः + महेशः ।

पदच्छेद : श्री पुष्पदन्तमुखपंकज निर्गतेन किल्बिषहरेण हरप्रियेण स्तोत्रेण समाहितेन कण्ठस्तिेन पठितेन भूतपतिः महेशः सुप्रीणितः भवति ।

अन्वयार्थ : **श्रीपुष्पदन्तमुखपंकज**=श्री पुष्पदन्ताचार्य जी के मुखारविन्द से, **निर्गतेन**=निकले हुए, **किल्बिष-हरेण**=सब प्रकार के पापों को हरने वाले, **हरप्रियेण**=भगवान शिव को सब प्रकार से प्रिय लगने वाले, **स्तोत्रेण**=इस स्तोत्र के,

समाहितेन=समाहित या एकाग्रचित्त होकर, **कण्ठस्थितेन**=कण्ठस्थ करके, **पठितेन**=पाठ करते रहने पर, **भूतपतिः**=पशुपति, **महेशः**= भगवान शंकर, **सुप्रीणितः**=अत्यन्त प्रसन्न, **भवति**=होते हैं ।

टिप्पणी : कहीं पर "समाहितेन" के स्थान पर "गृह-स्थितेन" भी प्रयुक्त हुआ है । घर में इस स्तोत्र को रखने से भी भगवान शिव का कभी स्मरण तो आएगा ही । परन्तु "समाहितेन" ही ज्यादा उपयुक्त लगता है ।

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर ।
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः ॥४४॥

संधिच्छेद : तव तत्त्वम् न जानामि कीदृशः+असि महा+ईश्वर यादृशः+असि महा+देव तादृशाय नमः नमः ।

पदच्छेद : महेश्वर कीदृशः असि(इति)तव तत्त्वं न जानामि । महादेव यादृशः असि तादृशाय नमः नमः ।

अन्वयार्थ : महेश्वर=हे महान् ईश्वर, कीदृशः असि=आप कैसे हैं, इति तव तत्त्वम-इस आप के तत्त्व को, न जानामि=मैं नहीं जानता । महादेव=हे देवादिदेव महादेव, यादृशः असि=जो और जैसा भी आपका तत्त्व है, तादृशाय=उस तत्त्व को, नमः नमः=बारम्बार नमस्कार है ।

टिप्पणी : ईश्वर के तत्त्व को कौन परिपूर्ण रूप में जान सका। यहां पर भक्त आत्मसमर्पण कर उस देवादिदेव महादेव को बार-बार प्रणाम करता है।

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं यः पठेन्नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ।।४५।।

संधिच्छेद : एक+कालम् द्वि+कालम् वा त्रि+कालम् यः पठेत् + नरः सर्व+पाप + विनिर् + मुक्तः शिव+लोके महीयते ।

पदच्छेद : यः नरः एककालं द्विकालं वा त्रिकालं पठेत् सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ।

अन्वयार्थ : **यः**=जो, **नरः**=मनुष्य, **एककालम्**=एक समय, **द्विकालम्**=दो–समय, **वा त्रिकालं**=या तीन समय प्रति दिन, **पठेत्**=इस स्तोत्र को पढ़े, तो वह, **सर्वपाप**=सब पापों से, **विनिर्मुक्तः**=छूट कर, **शिवलोके**=शिवलोक में, **महीयते**=महानता को प्राप्त होता है और पूजित होता है ।

टिप्पणी : पाठ प्रतिदिन नियमपूर्वक किया जाना चाहिए। ऐसा भक्त मरने के बाद शिवलोक में जाता है और महानता को प्राप्त होता है और वहां उसकी पूजा होती है।

यदक्षरं पदं भ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर ॥४६॥

संधिच्छेद : यत्+अक्षरम् पदम् भ्रष्टम् मात्रा+हीनम् च यत्+भवेत् तत्+सर्वम् क्षम्यताम् देव प्रसीद परम्+ईश्वर ।

पदच्छेद : देव यदक्षरं (च) पदं भ्रष्टं (च) यत् मात्रहीनं भवेत् परमेश्वर तत् सर्वम् क्षम्यताम् प्रसीद ।

अन्वयार्थ : **देव**=हे महेश्वर । **यदक्षरम्**=जो अक्षर, **च पदं**=और पद यहां, **भ्रष्टं**=अशुद्ध हो, **च**=और, **यत् मात्राहीनं भवेत्**=जहां मात्रा लगानी रह गई हो, **परमेश्वर**=हे परमेश्वर, **तत् सर्वम्**=प्रमादवश हुई उन सब त्रुटियों को, **क्षम्यताम्**=क्षमा कर देना और, **प्रसीद**=मेरे ऊपर सदा प्रसन्न रहना ।

टिप्पणी : संस्कृत पदों के अशुद्ध उच्चारण से अथवा लिखते समय मात्रा इत्यादि का गलती से न लगाने के कारण घोर अनर्थ अथवा विपरीत अर्थ हो जाता है। इन सब त्रुटियों से उपजित पाप के लिए भक्त भगवान शिव से क्षमा याचना कर रहा है और प्रसन्न रहने के लिए विनती कर रहा है। ऐसी क्षमा प्रार्थना करना उपयुक्त ही है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

पुस्तक-सूची

प्रस्तावना के ११वें परिच्छेद में सूचित पुस्तकों के अतिरिक्त नीचे लिखी पुस्तकें और ग्रन्थ इस कृति से सम्बन्धित हैं :—

१ यजुर्वेद

२ ईशावास्योपनिषद्

३ छान्दोग्योपनिषद्

४ बृहदारण्यकोनिषद्

५ माण्डूक्योपनिषद्

६ कठोपनिषद्

७ नारयणीयोपनिषद्

८ मनुस्मृति

९ श्रीमद् भगवद्गीता

१० दुर्गासप्तशती

११ ऋषि दुर्वासा रचित परशम्भुस्तव

१२ शिवपुराण

१३ स्कन्दपुराण

१४ मत्स्यपुराण

१५ नारदीयपुराण

१६ कूर्मपुराण

१७ पाताञ्जल योग दर्शन

१८ कश्मीर शैव शास्त्र

१९ श्री शंकराचार्य कृत साधना पञ्चक

२० आचार्य पतञ्जलि कृत व्याकरण महाभाष्य

२१ रावणकृत दीनक्रन्दनास्तुति

२२ तुलसीकृत रामायण

२३ आचार्य मम्मटकृत काव्यप्रकाश

२४ कविवर श्री सोमदेव भट्ट रचित कथासरितसागर

२५ ललवाक्य

२६ भर्तृहरिकृत वैराग्य शतक

२७ कबीर चरितावली

२८ त्रिपुरा रहस्य

— ० —

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
vii	11	गाम्मीर्यं	गाम्भीर्यं
xxxiv	5	लौर	और
3	1	भगवान्	भवान्
,,	3	मितरन्न	मितरन्
,,	4	जाने	न जाने
6	1	त्वदपादा०	त्वत्पादा०
,,	1	निपुणः	निपुणाः
7	7	मुक्त	मुञ्च
8	17	किम्	किमु
12	4	त्वर्चीने	त्वर्वाचीने
15	4	ऽस्मिन	ऽस्मिन्
18	1	यतिज्ज०	यत्तज्ज०
,,	3	मस्नि	मस्मिन्
21	2	सृजित	सृजति
,,	3	पूवर्यें	श्वर्ये
22	5	,,	,,
,,	18	शजीर	शरीर

27	1	वैष्णमिति	वैष्णवमिति
35	11	मे	नें
,,	,,	प्रतिद्ध	प्रसिद्ध
36	4	स्तुवन्जि	स्तुवञ्जि०
38	17	श्रणोति	शृणोति
40	1	विरंचि	विरिञ्चि
,,	2	च्छेतुं	च्छेत्तुं
48	3	श्रिरसि	शिरसि
52	4	उन्नत्स्यै	उन्नत्यै
57	2	स्त्रियन	स्त्रिनयन
,,	7	विधेयवस्य	विधेयस्य
,,	11	चयित०	चकित०
58	6	बढ़ता	बढ़ाता
,,	18	हेखकर	देखकर
65	1	घातादन्न०	घाताद्न्न०
69	1	नोद्गमम०	नोद्गम०
74	3	विधि	विधि-
78	1,5,10,16	साहस्त्रं	साहस्रं
86	2,7,12	मार्त्त्विज्यं	मार्त्विज्यं
98	4	दैवेति	दवैति
101	4	स्मर्तृणां	स्मर्तॄणां
	9	इसके बाद पदच्छेद छूट गया है	

110	1	हुतवह	हुतवह-
	3	परिच्छिना०	परिच्छिन्ना०
115	1,6,12	तिस्त्रो(:)	तिस्रो(:)
116	5	,,	,,
121	1	सहमहां	सह महाँ
126	1	मितिमिदं	मितमिदं
,,	2	प्रणतवान	प्रणतवान्
,,	3	नमन	नमन्
137	2	लंघिनी	लंघिनी
153	1	यागदिका:	यागादिकाः
158	1	आसमाप्तमिदं	आसमाप्ति वरं
160	2	प्रियेन	प्रियेण
166	6	मात्रहीनं	मात्राहीनं
115	4	समस्तं व्यस्तं और समस्तव्यस्तं दोनों पाठ ठीक लगते हैं।	
पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ

Set. 8.5.83